UNIVERSAL LIBRARY

OU_182135

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 J11S Accession No. H3104

Author જૈન, ચાંદમલચંદ

Title શિવનેરી કેસરી. 1956.

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रकाशक
रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
४८७२, चाँदनी चौक, दिल्ली

Checked 1969

प्रथम संस्करण १९५९
मूल्य ५ रुपये

मुद्रक
रामाकृष्णा प्रेस
८१६, कटरा नील, देहली ६

दो शब्द

भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम के प्रथम उन्नायकों में छत्रपति शिवाजी का नाम अग्रगण्य है। विदेशी सत्ता की जो जड़ें मुग़लशाही के रूप में भारतवर्ष में पैठ गयी थीं और धर्म के नाम पर जितने अनाचार तथा अत्याचार निरीह जनता पर हो रहे थे उससे जन-जन बौखला उठा था और उस समय एक ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता थी जो सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि पर अवतरित होकर धर्मान्धता की काट करे और एक ऐसा संग्राम छेड़े जिससे जनता को त्राण मिले।

शिवाजी में कुछ ऐसे दैविक गुण विद्यमान थे जिन्होंने उन्हें जन-प्रिय तो बनाया ही साथ ही जन-जन के जागरण, सहित उनके राजनीतिक तथा सामरिक शिक्षण के लिये एक शिक्षक का-सा कार्य भी उनसे सम्पन्न कराया। शिवाजी के कार्य-काल में एक ऐसा वातावरण प्रस्तुत हुआ तथा कुछ ऐसी ऐतिहासिक प्रतिभायें सहयोग के रूप में सामने आयीं जैसे सन्त तुकाराम, समर्थ बाबा रामदास एवं कुछेक अन्य महाराष्ट्रीय समर-शास्त्री जिन्होंने उस समय स्वतन्त्र-राष्ट्र-निर्माण में अद्वितीय इतिहास प्रस्तुत किया।

शिवाजी स्वयं में एक महान् धार्मिक, राजनीतिक, कूटनीतिक एवं श्रेष्ठ योद्धा थे जिन्होंने कठिन से कठिन परिस्थितियों में पड़कर भी अपने निजत्व को कभी नहीं खोया।

शिवाजी ने अपनी सैन्य-शक्ति को कठिन अनुशासन में कसकर भारतीय सभ्यता, संस्कृति तथा आस्था को सदा समुज्जवल रक्खा।

उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी उनका असाम्प्रदायिक होना। कठिन साम्प्रदायिकता के लोह को काटने के लिये उस वातावरण में उनकी वैसी असाम्प्रदायिकता इतिहास की अनहोनी घटना ही है।

उन्होंने पूना में अपने महल के सामने ही अपनी इस असाम्प्रदायिकता के प्रतीक रूप में एक मस्जिद का निर्माण कराया था।

यों भारतीय इतिहास में न जाने कितने व्यक्तित्व हैं जिनकी गरिमा की होड़ सरलता से नहीं की जा सकती किन्तु छत्रपति शिवाजी का उनमें एक पृथक स्थान व व्यक्तित्व है।

मूलतः शिवाजी के जीवन-वृत्त को लेकर ही मैंने इस उपन्यास की सर्जना की है और इस विश्वास के साथ कि हिन्दी-साहित्य में सम्भवतः इस प्रकार के अभाव को यह दूर कर सके। आशा है कि मेरी अन्य ऐतिहासिक कृतियों की भाँति यह उपन्यास भी आदर पायेगा।

कानपुर —यादवचन्द्र जैन

फरवरी, ५६

: १ :

पहाड़ी नोकों की भाँति ऊँचे-ऊँचे वृक्ष, वृक्षों के बीच छायी हरियाली, दूब की कोंपलों के बोझ से दबे पर्वतों की चोटियें, उन चोटियों के बीच-बीच दूर तक छाया घना जंगल, उस जंगल को दाब कर उभरी हुई पर्वत मालायें और उन पर्वत मालाओं की नोकों पर टँगा एक पहाड़ी क़िला उगते सूरज की इतराती किरणों में स्नान कर जैसे अभी-अभी अपने भारी भरकम डील-डौल को फरहरा करके प्रभात का निरन्तर आह्वान कर रहा था। पूरब के आकाश में सुनहली लाली के छा जाने से एक ओर प्रकृति-सुन्दरी का मन उमंग-उत्साह से भर रहा था और दूसरी ओर दिनमान की नवीन आशायें अणु-अणु में पुलक सञ्चार कर रही थीं।

उस लम्बे-चौड़े पहाड़ी क़िले की दीवालों की मोटाई को पार कर पहाड़ की ऊँचाई जैसे नीचे को ही ढलती चली गयी थी। कहीं कोई समतल भाग दिखायी ही नहीं देता था। तब किले की चहारदीवारी के किसी भी कोने पर खड़े होकर दृष्टि दौड़ाने पर दिखाई देता था कि पहाड़ उतरता ही चला जा रहा है। मीलों तक फैले पहाड़ का वह ढलाव पत्थरों का नहीं जैसे घने जंगलों का था।

क़िले के पूर्ववर्ती तोरण पर प्रभात के आगमन का हर्ष प्रकट करने के लिये एक सैनिक ने तुरही बजायी और क़िले के बाहर ज्यों प्रकृति-

सृष्टि के परमाणुग्रो मे नवजीवन भरने लगी उसी प्रकार किले के अन्दर सभी ओर व्यस्तता दिखायी देने लगी ।

किले के एक भाग मे सैनिको की प्रभात-कालीन कवायद प्रारम्भ हो गयी । हट्टे-कट्टे जवान अपने चुस्त पैरो को भूमि पर पटकते हुये डोलने लगे । सैनिक टुकड़ियाँ अपने नायको के निर्देशो पर अलग-अलग कदम मिलाने लगी । इस समय इन सैनिको ने अपने हाथो मे किसी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र नही ले रक्खे थे । एक प्रकार से इस समय सभी सैनिक एक स्थान पर ईश-प्रार्थना के लिये एकत्र हो रहे थे । सैनिको की तनी हुई मूछे, किसी-किसी की चुनी-कटी दाढ़ी, ऐठनी गर्दने, उभरे कधे, फूले हुए सीने, फड़कती भुजाये, चचल पैर विश्व इतिहास के किन्ही भी खूँख्वार योद्धाओ से जूझ सकते थे । उनके हृदयो मे इतना उद्वेलन था कि वे नैपोलियन की सेना मे भिड़ जाये, एलेक्जेण्डर के मकदूनियन सिपाहियो पर पिल पड़े, अपनी स्वाधीनता और सस्कृति को पद-दलित करने वाले किसी भी आक्रान्ता का दर्प दमन कर दे । उनमे भेद न फारस का था, न ईरान का, न टर्की का था, न ग्रीस का । वे आज महमूद गजनवी को ढूँढना चाहते थे और सिकन्दर को भी । उनका लक्ष्य जाति-भेद नही वरन आक्रमणकारी की उस लिप्सा को वेध देने का था जिसके आधार पर वह उसके देश और जाति के गौरव को नष्ट करना चाहता था ।

दैनिक नियम के अनुसार सैनिको की प्रार्थना समाप्त हुई । उनके नायक और अधिनायक अपने-अपने स्थानो मे हिले । किले की उस प्रार्थना भूमि से सैनिक टुकड़ियो को तितर-बितर होने का आदेश सेनापति के ओठो के बाहर निकलने ही वाला था कि किले के फाटक पर शख ध्वनि सुनाई दी । उपस्थित योद्धा समूह सतर्क हो गया । उनके बाहु ज्यो स्वत फड़कने लगे । उनकी कोठरियो मे रक्खी तलवारे ज्यो अपने आप झनझना उठी । वास्तव मे शख ध्वनि उन दिनो युद्ध की घोषणा होती थी ।

पल भर में एक पालकी सामने से आती हुई दिखाई दी। पालकी के आगे एक घुड़सवार चल रहा था। सभी ने पहचाना। सैनिकों ने सतर्क होकर तत्काल सैनिक अभिवादन किया। पालकी आगे बढ़ गयी। पालकी के पीछे चलने वाले आठ घुड़सवार भी यथावत् आगे बढ़ गये।

यह समूचा दल क़िले में स्थित राजमहल के सामने रुक गया। पालकी भूमि पर टिक गयी। पालकी-वाहकों ने पालकी का आवरण हटा दिया।

प्रार्थना-स्थल पर टकटकी बाँधे खड़े सभी सैनिकों में हर्ष की लहर दौड़ गई। उनके सामने ही पालकी से ज्यों एक देवी-रूप प्रकट हुआ। एक थकी सी काया पालकी के बाहर आई। वह श्वेत-वेशनी चुपचाप राजमहल की सीढ़ियों पर चढ़ने लगी।

स्वर गूँजे :

मातृ भूमि की जय—

जीजा बाई राजे की जय—

शिवा भवानी की जय—

शाह जी राजे की जय—

\+ + +

शिवनेर के किले में आज सभी आनन्दित थे। आज किले में महाराष्ट्र गौरव दादा जी कोणदेव पधारे थे। आज क़िले में जन-जन की मन-भावनी देवी जीजा बाई पधारी थीं। आज सभी को हर्ष था कि उन्हें शाह जी के कुशल-क्षेम की शुभ-सूचना मिली थी। आज सभी प्रसन्न थे कि उनके नेता शाहजी का प्रभुत्व बढ़ रहा था। आज शिवनेर के क़िले में तैयारियाँ हो रही थीं। शाह जी का बुलावा आया था। शाहजी ने पूना जागीर सँभाली थी और उसकी रक्षार्थ शिवनेर में रहने वाले उस सैनिक समूह को उन्होंने बुलाया था जो एक प्रकार से उनकी व्यक्तिगत धरोहर थे। वे उनके विश्वास-पात्र योद्धा थे।

योद्धाओं के हृदय प्रफुल्लित होते हैं जब उन्हें रण का आह्वान सुनाई

देता है। उनके भुज-दंड फड़कते हैं जब रणक्षेत्र में जूझने का अवसर सामने आता है। वे जैसे कृत-कृत्य होते हैं जब उन्हें उनके नेता का निर्देश प्राप्त होता है कि मृत्यु का आलिंगन करने के लिये वे तत्पर हो जायें। अस्तु,

उन दिनों जीजाबाई अस्वस्थ थीं। इस पर भी उनका हृदय उत्साहित था। कर्तव्य की ओर अग्रसर सैनिकों को विदा करते हुये वे मुखरित हो रही थीं। क़िले के राजमहल के उत्तर की ओर की बारादरी में वे एक चौकी पर बैठी थीं जहाँ से अभिवादन करती हुई सैनिक टुकड़ियाँ स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। उनके निकट ही दादा जी कोणदेव एवं मोरो तानदेव होनप अलग-अलग चौकियों पर बैठे हुये थे।

एक-एक करके सभी सैनिक दल सामने से निकलते चले गये और नेत्रों से ओझल होते रहे। योद्धाओं के तेवर और उनके हाथों में चमकती तलवारों को देख कर दादा जी अनायास ही कह उठे :

"मुझे पूना की सँभाल नहीं ऐसे सैनिकों का नेतृत्व मिलना चाहिये।

"वैसा ही कीजिये, न। पूना को मोरो जी देख लेंगे"—साधारणतः ओठों पर एक फीकी सी मुस्कान लाते हुए जीजाबाई ने कहा। कुछ देर तक चौकी पर एकासन बैठे रहने के कारण जैसे उन्हें कुछ कष्ट का अनुभव हो रहा था।

उनकी बात सुनकर दादा जी कुछ गम्भीर हो गये। तभी मोरो तानदेव होनप ने तत्परता पूर्वक कहा :

"मैं राज-काज के लिये नहीं शत्रु के सीने वेधने के लिये बना हूं। वही करूँगा। दादा जी आप चिन्तित न हों। मुझे आप का अधिकार क्षेत्र नहीं चाहिये।" कहते-कहते मोरो जी हँस दिये।

"क्या पागलपन की बात है। मुझे इनकी (जीजाबाई की ओर संकेत करते हुये) यह दशा देख कर चिन्ता हो रही है और आप व्यर्थ की बातें कर रहे हैं।"

जीजाबाई की ओर देखकर अनायास मोरोजी भी गम्भीर हो गये। वे बोले :

"आप विश्राम करें।"

"नहीं मैं अपने इन हृदय के टुकड़ों को विदा करके ही यहाँ से हटूँगी।"

सामने सैनिकों की अन्तिम टुकड़ी बारादरी के सामने से निकल रही थी। बहुत दूर पहाड़ी पर उतरते घोड़ों की टापों की आवाज़ें सुनाई दे रही थीं।

जीजाबाई की मुखाकृति अधिक जटिल होती जा रही थी परन्तु वह धैर्य पूर्वक बैठी थीं। तभी दादाजी कोणदेव ने जैसे निर्देशात्मक स्वर में कहा :

"बाई ! जाओ तो। लेटो।"

"नहीं। मैं भवानी के मन्दिर जाऊँगी।"

भवानी के मन्दिर जाने की बात सुनकर जैसे दादाजी का आगे कुछ कहने का साहस न हुआ। आसन से उठते-उठते जीजाबाई ने प्रश्न किया :

"दादा जी ! आप को भी तो पूना लौट जाना है?........और मोरो जी आपको ?"

"तुम्हें........."

"दादा जी ! मेरी आप तनिक भी चिन्ता न करें।"

"ठीक है; तो मैं चलता हूं। मोरो जी उठिये।"

राजमहल से लेकर सम्पूर्ण किले में सन्नाटा खिच गया। समूची चहल-पहल जैसे सैनिक बटोर ले गये। जीजाबाई के निकट इस समय निपट नीरवता के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं था। उस उदास वातावरण में उन्होंने कुछ पल उस दिशा की ओर निहारते हुए व्यतीत किये जो शिवनेर के क़िले के फाटक के बाहर झाँकती थी। उधर ही तो वे रण-बाँकुरे अभी-अभी गये थे जिनके शौर्य पर पूना की शान्ति अवलम्बित

थी; जिनके पराक्रम पर देश की आन टिकी हुई थी; पर जिनकी वीरता उनके पति का प्रभुत्व स्थिर था; जिनकी कटिबद्धता पर आक्रान्ता को यह समझना था कि देशों को जीतने वालों की अपेक्षा देश पर मरने वालों की ही सदा विजय हुई है।

जीजाबाई का देश-गौरव मराठा सैनिकों पर सदा ही स्नेह रहा था। इस समय अपने सैनिकों को विदा कर उनके हृदय में जो गौरव अविभूत हुआ था उसके साथ ही ममत्व की चिर-वेदना भी जागृत हो रही थी। अस्तु,

उन समस्त सैनिकों, तत्पश्चात् दादाजी कोणदेव एवं मोरोजी तान-देब होनप को विदा कर उन साक्षात् देवी ने शिवादेवी के मन्दिर की ओर प्रस्थान किया।

: २ :

दादा जी कोणदेव शिवनेर की पहाड़ी पगडंडी पर घोड़े को बढ़ाये चले जा रहे थे । उनके साथ मोरो जी तानदेव होनप भी थे किन्तु उनके पीछे-पीछे चल रहे थे । वास्तव में जिस स्थान पर वे चल रहे थे वहाँ केवल एक ही घोड़ा चल सकता था । पगडंडी के दोनों ओर जो जंगली घास व काँटेदार वृक्ष उगे हुये थे वे घोड़ों की ऊँचाई से भी ऊँचे थे । ग्रीष्म ऋतु की तेज़ धूप घुड़सवारों के पसीने को पिघला रही थी । इन दोनों नर-नायकों के साथ आठ सैनिक और थे जो इसी प्रकार एक के पीछे एक बढ़ते चले आ रहे थे ।

दादा जी को इस समय जीजाबाई का ध्यान घेरे हुये था । वे सोच रहे थे कि जीजाबाई की इस अवस्था में शाहजी को उनके पास होना चाहिये था । स्वयं उन्हें तो इस प्रकार छोड़कर नही आना चाहिये था । परन्तु कर्तव्य की हुंकार पर हृदय का कोई अधिकार नहीं है । उसी आधार पर शाह जी शिवनेर से दूर हैं । उसी कारण वे स्वयं इस समय इस काँटेदार जगल को पार कर रहे है । वैसी ही परिस्थितियाँ हैं जिन्होंने विवश किया है कि जीजाबाई को शिवनेर के इस एकान्त क़िले में रक्खा जावे । शाहजी का कोई निश्चित ठिकाना नहीं है । भाटवाड़ी के उस ऐतिहासिक युद्ध के अनन्तर मलिक अम्बर और शाहजी के

बीच ईर्षा का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक था। मलिक अम्बर शाहजी के बढ़ते हुये वैभव को कैसे सहन कर सकता था ?

विचारों में उलझे दादाजी को अचानक मोरोजी ने टोका :

"वह मार्ग जिससे हमारी सेना गई है, क्या इससे अधिक चौड़ा है ?"

"हाँ, उस पर कम से कम दो घुड़सवार बराबर-बराबर चल सकते हैं।"

"परन्तु उधर का जंगल इससे अधिक घना है।"

"साथ ही उधर वन्य-पशुओं का भी विशेष साम्राज्य है।"

दादा जी के उपरोक्त शब्द बाहर आये ही होंगे कि एक शेर बायीं ओर की झाड़ी से छलांग मारकर दाहिनी ओर सर्र से निकल गया। दादा जी ने अपनी तलवार सीधी की। मोरो जी भी सतर्क हुये परन्तु शेर लौटा नहीं। अब तक, चलते-चलते कुछ फैलाव की जगह आ गई थी; तभी मोरो जी कोणदेव के बराबर आ गये और हँसते हुये बोले :

"यह निज़ामशाह था, क्या ?"

"नहीं, आदिलशाही गीदड़ था। तभी भाग गया।"

"दादा जी ! मैं आपकी इस भावना को कभी भी स्वीकार नहीं कर सकता।"

"तुम्हारे स्वीकार करने न करने से मुझपर कोई अन्तर नहीं पड़ता।"

"फिर भी आपको यह तो ध्यान करना ही चाहिये कि इस समय स्वयं शाहजी आदिलशाह से अपना नाता जोड़ चुके हैं।"

"मोरो जी ! यों तो यह राजनीति है परन्तु मैं इस राजनीति अथवा ऐसे सिद्धान्त को भी कभी महत्व नहीं दे सकता। फिर शाहजी सब सही करते हैं; मैं यह भी नहीं मानता।"

"मैं क्या सुन रहा हूं, दादा जी ?"

"यही कि इतने पर भी मैं शाहजी के निर्देशों को मानने के लिये तत्पर हूं ।"

"तो आपकी दृष्टि में शाहजी का निज़ामशाही को छोड़कर आदिल शाह को अपनाना अनुचित है ?"

"पूरी तरह । अभी जिससे युद्ध किया उसी को थोड़े समय बाद अपना लेना कहाँ की बुद्धिमानी है ?"

"परन्तु अभी बड़े शत्रु से मोर्चा लेना जो शेष है ।"

"प्रश्न इस समय उसका नहीं था । शाहजी के सामने इस समय भावना केवल मलिक अम्बर के ऊपर प्रभुत्व स्थापित करने की थी । जिसके लिये मेरे ध्यान में केवल यही एक उपाय नहीं था ।"

"तब क्या था ?"

"पूना में स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना की जा सकती थी ।"

"जो जल्दी ही पीस दी जाती ।"

"वह असम्भव था फिर भी इस ग़ुलामी से अच्छा था ।"

"क्या वह आत्महत्या न होती ?"

"वह······।"

बीच में ही टोक कर मोरो जी बोल पड़े :

"राजनीति में भावनाओं को कोई स्थान नहीं है दादा जी !"

"इसीलिये तुम भी निज़ाम शाही को तिलाञ्जलि देने को प्रस्तुत हो ।"

"अभी उसमें देर है । अवसर की प्रतीक्षा······।"

"मोरोजी । कोई नीति हो—राजनीति भी—किन्तु जिसमें सिद्धान्ततः सच्चाई नहीं उसमें टिकाव भी अधिक नहीं हो सकता ।"

"क्या आप समझते है कि जिन स्थितियों में शाहजी ने जीजाबाई को शिवनेर के क़िले में रक्षार्थ भेजा है उनमें आपके ये तर्क कुछ सहायता पहुँचा सकते हैं ।"

"सत्यता प्रत्येक स्थिति में श्रेय है । और इन स्थितियों के अतिरिक्त

भी जीजाबाई को शिवनेर भेजने के जो कारण हैं उन्हें, मोरोजी ! आप भी जानते हैं।"

"यह ठीक है फिर भी जीजाबाई शिवनेर से अधिक और कहीं सुरक्षित नहीं थी।

"यह सुरक्षा भी किस प्रयोजन की जबकि उनके निकट एक भी जिम्मेदार व्यक्ति नहीं।"

"हनमन्ते तो है।"

"यही एक सन्तोष है।"

अब जंगल कुछ कम हो गया था। पर्वत की ऊँची-नीची शिखरें धूप में तपती सी प्रतीत हो रही थीं। एक स्थल पर अपने घोड़े को आगे बढ़ाकर दादा जी ने सामने झाँक कर देखा—जुनार की बस्ती साफ दिखाई दे रही थी जैसे इस पहाड़ के ठीक नीचे ही हो। वह थी भी परन्तु वहाँ तक पहुँचने के लिये उस पर्वत की परिक्रमा देनी थी। दादा जी कोणदेव ने अपने घोड़े को ऐड़ दी। साथ के घुड़सवार भी बढ़ चले।

मोरोजी होनप सोचते जा रहे थे—कोणदेव परिस्थितियों के घुमाव के विपरीत चलना चाहते हैं। उनके सिद्धान्तों और वास्तविक राजनीति में बड़ी भिन्नता है। किन परिस्थितियों में शाहजी को कौन सी करवट लेनी पड़ रही है यह जानते हुये भी कोणदेव तर्कों द्वारा शाहजी की खुली तलवार को गुट्ठल करना चाहते हैं। तभी उन्होंने कहा :

"तब आपकी दृष्टि में भाटवाड़ी का युद्ध व्यर्थ हुआ ?"

"युद्ध तो सदा ही व्यर्थ होते हैं परन्तु भाटवाड़ी के युद्ध ठानने से क्या लाभ सोचा गया था ? वह शाहजी की अदूरदर्शिता थी। होता क्या ? शहज़ादा परवेज़ और महाबत खाँ शाहजहाँ को ले जाकर जहाँगीर के सुपुर्द कर देते। बस। वह तो शाहजी ने मलिक अम्बर को उत्साहित किया और अहमदनगर की सल्तनत तो मलिक अम्बर की गुड़िया थी ही।"

"तब तो, दादा जी ! आपका सिद्धाँत बहुत ऊँचा है। आपके कथनानुसार शाहजहाँ को पनाह नहीं देनी चाहिए थी। तब तो अपने आश्रय में आये किसी भी व्यक्ति की स्वयं हत्या कर देनी चाहिये।" कहते हुये ज्यों मोरोजी में आवेश भरता जा रहा था।

"मोरोजी ! आपके कथनानुसार जिस प्रकार राजनीति में भावनाओं को कोई स्थान नहीं है उसी प्रकार राजनीति में आवेश को भी कोई स्थान नहीं हैं। स्थल-स्थल पर तर्क-बुद्धि के प्रयोग की आवश्यकता है। और मैं कहता हूं कि यही शाहजहाँ एक दिन फिर दक्षिण पर आक्रमण करने स्वयं आयेगा। वह अहमदनगर को भी पददलित करना चाहेगा और बीजापुर को भी। उसके शत्रु निजामशाह भी हैं और आदिलशाह भी। या ये दोनों ही स्वयं उसकी परतन्त्रता स्वीकार करें यह दूसरी बात है। यही राजनीति भविष्य के गर्भ में है। उस समय न मलिक-अम्बर की नेताशाही चलेगी न शाहजी की अस्थिरता।"

"तब आप चाहते थे कि शाहजादा परवेज की बात मानकर भाट-वाड़ी का युद्ध न होता और उसी समय जहाँगीर की पराधीनता स्वीकार करली जाती।"

"उस समय यदि जहाँगीर से न भिड़ा जाता तो दक्षिण की राज-सत्ता का चित्र ही कुछ दूसरा होता।"

"कैसा ?"—मोरोजी ने प्रश्न किया।

यों अभी सभी पहाड़ी पर थे किन्तु जुनार का मार्ग एक मील से भी कम रह गया था।

"शाहजी और मलिक अम्बर की दक्षिण में नेतृत्व प्राप्ति की वह प्रतिद्वन्द्विता एक खेमे में रहकर कभी चल ही नहीं सकती थी।" दादा जी कोणदेव ने कहा।

"तभी तो शाहजी ने आदिलशाही से समझौता किया है।"—मोरोजी ने अपना पक्ष प्रबल होते देखकर प्रसन्नता सहित व्यक्त किया।

"क्या आप में इतनी भी बुद्धि नहीं कि यह समझ सकें कि इस

दोनों ओर के नाच-तमाशे से शाहजी का क्या बना ? या क्या बनेगा ?"

मोरोजी सोच की स्थिति में पड़ गये। तभी दादाजी कोणदेव ने पुनः प्रारम्भ किया :

"जिस प्रकार शाहजी ने अपनी पूना की जागीर को बाहुबल से प्राप्त करने की योजना बनाई है उसी प्रकार उन्हें दक्षिण में एक सशक्त सत्ता की स्थापना करने का प्रयत्न करना था।"

"दादाजी ! वह कार्य इतना सरल नहीं था।"

"सत्ता की स्थापना कुछ सरल कार्य है भी नहीं।"

इस प्रकार उस युग के दो यशस्वी व्यक्तित्व तर्कों में उलझे हुए थे जिनका कोई ओर-छोर नही था किन्तु उनकी यात्रा का छोर आ चुका था और अब वे अपने अंगरक्षकों के साथ जुनार की बस्ती में पहुँच गये थे।

उस मध्यांतर काल में जुनार की बस्ती अपने दिवस के कार्यों में पूरी तरह व्यस्त थी। जुनार-निवासी इस समय पूरी शांति का आनन्द ले रहे थे। उसकी सरहद से आगे दूर-दूर तक अनेक बार युद्ध मँडरा चुका था किन्तु जुनार शांत था। इस क्षण भी दो स्थलों पर हरि-कीर्तन की मधुर-ध्वनियों ने कोणदेव का ध्यान आकर्षित किया। उन विषम-स्थितियों में भगवन्नाम को एक मात्र आश्रय-आधार मान कर जनता की जो आस्था आत्मा को सुख-शांति प्रदान कर रही थी उसी में दादाजी कोणदेव एवं मोरोजी तानदेव होनप ने अपने अन्य सैनिकों के साथ सम्मिलित होकर अपनी धार्मिक प्रवृत्तियों का परिचय दिया।

इस प्रकार उस अपरिचित स्थान पर अपने-अपने घोड़ों को किनारे खड़े करके सभी ने हरिकीर्तन का, थोड़े समय तक, आनन्द लिया। हरि कीर्तन की उस भीड़ में बैठे-बैठे कोणदेव को स्मरण हो आया, जीजाबाई का और साथ ही ध्यान आया पूना पहुँचने का।

वे तत्काल उठ खड़े हुये।

जुनार के लोगों ने यह तो जाना कि वह दल किसी-न-किसी रूप में

किसी-न-किसी राजसत्ता से सम्बन्धित है परन्तु हरि-कीर्तन की व्यस्तता में किसी ने कोई प्रश्नोत्तर नहीं किया।

दादा जी कोणदेव पुनः घोड़े पर सवार हुये साथ ही मोरोजी भी। तभी दादा जी ने मोरोजी को सम्बोधित कर प्रश्न किया :

"तब ?"

"मुझे तो अहमदनगर जाना है।"

: ३ :

जुनार की सीमा पर पहुँचते-पहुँचते मोरोजी कोणदेव से पृथक हो गये। दादाजी कोणदेव ने एक बार पर्वत की ओर दृष्टि फेंकी। शिवनेर का क़िला दिखाई दे रहा था। तत्काल ही उनके हृदय में एक आशा जागृत हुई और उन्होंने तेज रफ्तार में अपना घोड़ा पूना की ओर बढ़ा दिया।

शिवनेर का क़िला एक ऐसी पहाड़ी पर था जिसमें बहुत सी गुफायें, ऊँचे-ऊँचे जंगल से घिरे पेड़ और नोकीली चट्टानें थीं। क़िले के आसपास इतनी समतल भूमि नहीं थी कि जहाँ क़िले की चारदीवारी के बराबर से एक छोटी सैनिक टुकड़ी भी ठीक खड़ी हो सके। क़िले के फाटक से निकलते ही एकदम ढलवाँ पहाड़ी आरम्भ हो जाती थी। क़िले में आने-जाने के दो मार्ग थे जो साफ-सुथरे नहीं थे। वह एक छोटी और एक बड़ी पगडंडी की तरह के थे। छोटी पगडंडी पर दो व्यक्ति भी बराबर-बराबर नही चल सकते थे। हाँ, बड़ी पगडंडी पर दो सवार बराबर से आ जा सकते थे। यह दोनों पगडंडियाँ भी जंगली झाड़ और ऊँची घास फूस से घिरी हुई थीं। यह समूची व्यवस्था एक प्रकार से क़िले की सुरक्षा के हेतु थी। कोई भी शत्रु सुगमता से शिवनेर के क़िले पर नहीं पहुँच सकता था।

इसके साथ ही शिवनेर की पहाड़ी में असंख्य वन-जन्तु थे जो एक प्रकार से किले में सदा आने-जाने वालों से तो परिचित थे किन्तु किसी भी अजनबी को देखकर उस पर टूट पड़ते थे।

इन दिनों शाह जी की परिस्थिति अत्यधिक अस्त-व्यस्त थी। उनके शौर्य-पराक्रम एवं युद्ध-नीतियों की सफलताओं से उनका प्रभाव तो सर्वत्र फैल रहा था किन्तु उससे लोगों में ईर्षा भी बढ़ रही थी। शाहजी स्थिर होकर न निजामशाही के साथ रह रहे थे न आदिलशाही के साथ। यों एक स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना का स्वप्न उनके मस्तिष्क में अवश्य तैर रहा था परन्तु उसके लिए परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं मिल रही थीं। इधर मलिक अम्बर से उनकी गहरी प्रतिद्वन्द्विता चल गई थी। ऊपर से मुगल आक्रमणों का सिलसिला भी निरन्तर चल रहा था। इन अस्थिर परिस्थितियों में उन्हें किसी एक स्थान पर रहने का अवसर ही नहीं मिलता था। अवसर क्या एक प्रकार से निवास की अरक्षा सी ही बनी हुई थी।

इन्हीं परिस्थितियों में शाह जी ने अपनी गर्भवती पत्नी जीजाबाई को सुरक्षा के ध्यान से शिवनेर के क़िले में भेज दिया था। दादाजी कोणदेव को उन्होंने यह भार सौंपा था कि जीजाबाई को शिवनेर के क़िले में पहुँचाकर वे उनसे तत्काल पूना में मिलें।

सरलता और सौम्यता की प्रतिमूर्ति जीजाबाई को भी अपनी स्थिति की विवशता में पति का साहचर्य त्यागकर उस एकान्त स्थान में आना पड़ा था। वैसे वे सर्वदा यह चाहना रखती थीं कि पति के साथ रहकर आवश्यकता पड़ने पर रणचण्डी का रूप धारण कर युद्धक्षेत्र में प्रवेश कर।

परन्तु गर्भभार से क्षीण और निर्बल जीजाबाई को शिवनेर आना पड़ा।

शिवनेर के क़िले में अवस्थित राजमहल के उत्तर में क़िले की देवी शिवाभवानी का एक छोटा सा मन्दिर था। यों मन्दिर तो बहुत पुराना

और अस्त-व्यस्त था किन्तु शिवनेर के आस-पास उसकी अत्यधिक मान्यता थी। विशेषतः स्त्रियाँ शिवाभवानी की मनौतियाँ मनाया करती थीं। इधर जब से शाहजी के व्यक्तिगत सैनिकों ने शिवनेर के क़िले में निवास बनाया था तब से उस जंगली पहाड़ को पार करके आने वाली जुनार की जनता का आवागमन एक प्रकार से समाप्त हो गया था परंतु मराठा सैनिक भी शिवाभवानी की यथावत अर्चना-उपासना किया करते थे।

इन सैनिकों ने शिवाभवानी के मंदिर की व्यवस्था को और अधिक सँभाला था। मन्दिर में नित्य ही पूजन और कीर्तन होने लगा था। प्रत्येक रविवार को सैनिक एक जंगली मेढ़े की बलि शिवाभवानी को दिया करते थे। उस दिन उनमें अधिक उत्साह रहता था और वे उत्सव सा मनाते थे। प्रसाद रूप में बलि का भाग पाने के साथ-साथ; सैनिक अपने भोजनालय में भी नये व्यंजन तथा पकवान बनाया करते थे।

शिवाभवानी की प्रशंसा जीजाबाई ने भी बहुत सुनी थी। मनोकामना पूर्ण होने की बात का ध्यान कर उन्होंने अनेक बार शिवनेर क़िले की शिवाभवानी के दर्शन करने का संकल्प किया था परन्तु अब तो वह अवसर ही आ गया जब निरन्तर शिवाभवानी के निकट रह कर उन पर अपनी मान्यता के पुष्प अर्पित करती रहें।

वह एक ऐसा युग था जिसमें लोगों में धार्मिक आस्थायें अधिक जागरूक थीं।

अस्तु—

दादाजी कोणदेव एवं मोरोजी तानदेव होनप को विदा कर साध्वी जीजाबाई ने शिवाभवानी के मन्दिर में प्रथम प्रवेश किया। श्रद्धा में उनके पलक मुंदे हुए थे। गर्भ पीड़ा से शिथिल काया को सँभाले रहकर जीजाबाई ने भवानी के सम्मुख मत्था टेक दिया और उनके अन्तर्मन ने माँगा—

मेरी आराध्य देवी!

मुझे वरदान दे। मुझे एक पुत्र दे। ऐसा पुत्र दे जो जाति, समाज और देश का गौरव हो। जो तेरा पुत्र हो। जो शिवाभवानी का पुत्र हो।"

शिवाभवानी के मन्दिर में ही दर्शन करते-करते जीजाबाई में हर्ष-आनन्द के साथ-साथ पीड़ा भी बढ़ी। दो दासियों ने उन्हें किसी प्रकार निकटवर्ती महल में पहुँचाया।

पल भर में भाग-दौड़ प्रारम्भ हो गई और ''नवजात शिशु अपनी माता के पलंग पर लेट कर हाथ-पैर पटकने लगा। जीजाबाई ने पुत्र को वक्ष से लगाया तथा शिवाभवानी की स्मृति कर उन्होंने पुलक में पलक मूंद लिये।

× × ×

जुनार की जनता ने जब यह सुना कि ऊपर शिवनेर के क़िले में शाहजी को पुत्र-रत्न-लाभ हुआ है तो हर्षोल्लास में लोग क़िले की ओर चल दिये। उन्होंने जैसे एक जुलूस बना लिया था। किसी के हाथ में शंख तो, किसी के हाथ में डमरू, कोई मृदंग लिये था तो कोई लम्बी तुरही। सभी आनन्द मनाते, जयकारे बोलते, तालियाँ पीटते पहाड़ी पर चढ़ने लगे। उस भीड़ के भय से शेर अपनी-अपनी माँदों में दुबक गये। भालू पगडंडियों पर आये परन्तु भाग गये। शेर और भालू ज्यों प्रतीक थे शत्रु के। सर्प भी इधर-उधर रेंगे और बिलों में घुस गये जैसे वे प्रतीक थे विश्वासघातियों के। ऊपर आकाश में पक्षियों का शोर उभरता रहा ज्यों वे उनकी प्रगति को मार्ग दिखला रहे थे। ज्यों वह सर्वशक्तिमान भी प्रसन्न था कि जनता के भावी त्राता को जनता से मिला दे।

और जुनार की जनता ने शिवनेर के क़िले में प्रवेश किया। उसने जीजाबाई के रूप में वीर-प्रसविनी जननी के दर्शन किये। उसने उस वीर के दर्शन किये—उस बाल छवि के दर्शन किये—जिसकी भोली सी भर-माई सी दृष्टि उस भारी भीड़ को देखकर स्थिर हो गई थी। उन प्यारे से नेत्रों को देखकर ऐसा लग रहा था जैसे उस जनता-जनार्दन के समूह

पर वे अपने स्वरूप का प्रभाव उन सबके हृदयों में स्थापित कर रहे हों। उस मुखाकृति के आकर्षण से ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे उसमें कोई अन्तर का प्रकाश दीपित हो।

शिशु के पलंग के निकट ही जननी जीजाबाई बैठी हुई थी। जनता की भीड़ वहीं जा पहुँची थी। जीजाबाई देख रही थीं।

"पूत के पाँव पालने में"

और तत्क्षण ही नव-शिशु ने एक ज़ोर की किलकारी भर कर हाथ-पैर पटक लिये। पल भर में उसने अपने दाहिने पैर का अँगूठा ओठों में भर लिया और मीठी चुसकियाँ लेने लगा। लगा जैसे जनता को देख कर बालक हर्षित हो रहा हो।

जुनार की महाराष्ट्रीय जनता भी आनन्द में बाल-छवि निहारती रही। कुछ देर के बाद सभी लोग लौटने को तत्पर हुये किन्तु जीजाबाई के निर्देश पर कोई लौटा नहीं। सभी लोग क़िले में इधर-उधर फैलकर उत्साह-आनन्द मनाते रहे। कुछ भवानी के मन्दिर की ओर बढ़ गये।

जीजाबाई के निर्देश पर क़िले के कर्मचारियों ने जुनार की जनता के आतिथ्य की व्यवस्था की। उस समूचे दिवस जुनार की जनता ने शिवनेर के क़िले में अठखेलियाँ की। एक ओर तो मिष्ठान की भट्टियाँ चढ़ी हुई थीं और दूसरी ओर क़िले के घास के मैदानों में कोई नट का खेल दिखाता रहा; तो कुछ लोग मल्ल-युद्ध में व्यस्त हो गये। कई मण्डलियाँ दूर-दूर छितर कर हरि कीर्तन में लीन हो गईं।

हरे मुरारे
जय बासुदेव

हरि कीर्तन की मधुर ध्वनियों से शिवनेर के उस एकान्तिक उदास क़िले में जैसे हर्षोल्लास के साथ नवजीवन भर गया।

उस बड़ी भीड़ की भोजनादि की व्यवस्था में कुछ विलम्ब तो लगा ही। उस प्रयत्न में क़िले के सब कर्मचारी जुट गये और उनके साथ

दूसरे लोग भी। मध्यान्तर में भोजन तैयार हुआ।

पंगत बैठ गई। ज्योनार होने लगी।

दूर बैठी जीजाबाई को पुत्र की प्राप्ति से अधिक आनन्द इस समय हो रहा था। उनका जी कर रहा था कि वे स्वयं जाकर अपनी जनता को परोसें किन्तु उनकी कृशता ने उन्हें विवश कर दिया।

इस प्रकार क़िले में दिन भर ही उछल-कूद मची रही। लोग खेलों और दावत में इतने लीन हो गये कि बस्ती को लौटना ही भूल गये। धीरे-धीरे शाम पास आ गई। दूर जाना था। रास्ता खतरनाक था। उपस्थित जन समूह ने अब क़िले से भागने की तत्परता दिखाई।

चलते-चलते भी अँधेरा हो गया। क़िले के कर्मचारियों ने अनेक मशालें जला-जलाकर जनता को दीं। मशालों के प्रकाश से वातावरण जगमगा उठा।

जुनार लौटकर जनता ने घर-घर दीवाली मनाई। शिवनेर के क़िले में मशालों की रोशनी से दूर-दूर का अँधियारा भाग गया।

× × ×

छै अप्रैल की सूचना पहुँचते-पहुँचते अट्ठारह दिन लगे। नवजात शिशु के पिता शाहजी उन दिनों परिस्थितियों का अवलोकन करने के लिये सुदूर दक्षिण की ओर जा रहे थे। उन्हें ख़ान जहान लोदी से विशेषरूप से भेंट करनी थी। शाहजी के साथ लगभग दो सौ सवार चल रहे थे। पुत्र-जन्म की सूचना जुनार से पूना पहुंची और पूना से दादाजी कोणदेव ने दो घुड़सवार शाहजी की ओर भेजे।

पुत्र-लाभ की सूचना पाकर किसी पिता का हृदय कितना प्रफुल्लित हो सकता था किन्तु कर्तव्य की निष्ठा एवं परिस्थितियों की जटिलता ने शाहजी को शिवनेर की ओर लौटाने के स्थान पर दर्या ख़ाँ के पीछे जाने के लिये विवश किया।

× × ×

आदिल शाही के दो सरदार दर्या खाँ और खाँजहाँ बाग़ी हो गये थे। पहले तो ये निज़ाम शाही से जा मिले और तब इन्होंने अलग ही बग़ावत का झंडा खड़ा किया। आदिलशाही की ओर से शाहजी इन्हें दाबने के लिये भेजे गये। शाहजी ने बहुत समय तक इनका पीछा किया। बहुत संघर्ष भी हुआ और अन्त में दर्या खाँ मारा गया। खांजहाँ भाग गया।

दर्याखाँ को कुचलने के उपरांत शाहजी ने अपने घोड़े को शिवनेर की ओर मोड़ा।

पुत्र को देखने के लिये इस समय शाहजी का हृदय उत्कंठित हो रहा था। उधर पुत्र लाभ के समय पति का अभाव पुत्र की माता को भी अत्यधिक अखर रहा था, किन्तु जीजाबाई का समस्त प्रेमानुराग, ममत्व, कर्तव्य अब पुत्र पर केन्द्रित हो गये थे।

शिवाभवानी से वरदान स्वरूप प्राप्त पुत्र का नामकरण जीजाबाई ने भवानी के नाम पर ही शिवा किया।

अब शिवा की बाल-छवि निहार-निहार कर ही जीजाबाई को पति का अभाव सहन करना पड़ रहा था।

× × ×

आज जीजाबाई प्रातःकाल से ही अधिक प्रफुल्लित थीं। उनका वाम अंग फड़क रहा था। उन्होंने प्रातःकाल से ही किले में जैसे उत्सव दिवस सा मना रक्खा था।। स्नानादि से निवृत होकर शिवा को गोद में लेकर वे भवानी के मन्दिर में गईं। बालक को उन्होंने किसी पूजा की सामग्री की भाँति भवानी के सामने रख दिया और स्वयं धरती पर माथा टेक कर बैठ गईं। इस प्रकार पुत्र की मंगल कामना करते हुये वे घंटों उसी स्थिति में बैठी रहीं।

बालक भी भवानी के सम्मुख खेल करता रहा। वह कभी अँगूठा चूसता, कभी हाथ-पैर उछालता और कभी किलकारियाँ भरता।

भवानी मन्दिर से लौटकर जीजाबाई ने रसोई में प्रवेश किया। वहाँ

खीर, पूड़ी, पकवान और भाँति-भाँति के व्यंजन बनाये।

शिवा उतने समय तक सेविका की गोद में खेलता रहा।

उधर क़िले के कर्मचारियों के भोजनालय में भी पूड़ी-मिठाई बन रही थी। सभी मगन थे।

कभी-कभी पति का स्मरण कर जीजाबाई का हृदय भर आता था। वे सोच लेतीं काश! वे उनके पास होते तो कितना वृहत आयोजन करते। कितनी खुशियाँ मनाते।

दोपहर का समय था। जीजाबाई शिवा को गोद में लिये बैठी थीं। चाँदी की चम्मच से उन्होंने खीर का एक कौर शिशु के मुख में डाला था और चाँदी के बड़े कटोरे से दूसरी चम्मच भरने की तैयारी कर ही रही थीं कि उनका हृदय द्विगुणित प्रसन्नता से भर गया।

शिवा के अन्नप्राशन संस्कार के समय शाहजी पहुंच गये।

: ४ :

शाहजी शिवा शिशु को गोद में लिये शिवनेर क़िले के महल के अन्त:पुर में, आँगन में, बैठे थे। उनकी संगमरमर की चौकी के पास ही जीजाबाई भी एक चौकी पर बैठी थीं। शाहजी शिवा को बारम्बार चूम लेते और तब चलने को तत्पर होते। हर बार ही जीजाबाई के —"बैठिये"—कहने पर वे उठते-उठते बैठ जाते। इस समय शाहजी जैसे सभी चिन्ताओं से मुक्त थे। पुत्र ने ज्यों उनकी समस्त राजनीतिक गुत्थियाँ सुलझा दी थीं या भुला दी थीं।

अनायास ही उनकी दृष्टि समक्ष बैठी पत्नी पर जा टिकी। वह पति की दृष्टि थी। शाहजी ने देखा सामने एक देवी रूप विराजमान है। उन्होंने देखा उनकी गोद में खेलते पुत्र की माँ सामने बैठी है। उन्होंने देखा उनकी पत्नी—उसका रूप मुरझा सा गया है। उसका यौवन ढल सा गया है। उसके नेत्रों में यौवन की वह मुस्कराहट नहीं जो कुछ वर्षों पूर्व थी जो बरबस उन्हें अपनी ओर खींचती थी। उन्होंने देखा उन गुलाबी गालों की लालिमा कुछ पीली, कुछ सफेद पड़ गई है। उन्होंने देखा वे रतनारे से ओठ धूमिल पड़ गये हैं। सब मिलाकर ज्यों जीजाबाई में वृद्धता के लक्षण प्रकट होने को हैं। परन्तु इस सबके साथ ही उसमें दैविक सुषमा अधिक प्रखर हो रही है। परन्तु वह एक ध्यान था।

मस्तिष्क में वैसे भावों की एक रेखा सी खिंची और विलीन हो गई। दक्षिण की राजनीति ने पुनः उनके विचार-तन्तुओं को उलझा लिया।

तभी जीजाबाई कह उठीं :

"तुकाराम बाबा जुनार में टिके हैं…"

जीजाबाई की बात पूरी भी न हो पाई थी कि शाहजी विचलित हो उठे। उन्होंने शिवा को तत्काल जीजाबाई की गोद में टिका दिया। ज्यों जुनार का नाम आते ही वे अस्थिर हो गये परन्तु स्थान से उठे नहीं। जीजाबाई पति के स्वभाव को जानती थीं। उनकी नीची दृष्टि ऊपर उठी। उन्होंने देखा पति कुछ अव्यवस्थित हो गये हैं और तभी वे पूछ बैठीं :

"कैसा जी है ?"

"ठीक है," और शाहजी न ओठों पर मुस्कान लाने का निरर्थक प्रयास किया—"सन्त तुकाराम के दर्शन तो मैं भी करना चाहता हूँ; परन्तु…।"

"परन्तु क्या ?"

"कुछ नहीं।"

"कुछ तो…।"

"जुनार में ही कहीं शाहजहाँ छिपा है।"

"हत्प्रभ जीजाबाई के मुंह से निकल पड़ा :

"शाहजहाँ…?"

"और उसके बीबी-बच्चे महीम में कहीं समुद्र के किनारे पड़े हैं।"

जीजाबाई ने ध्यान किया कि कह दे—"ये कैसी परिस्थितियाँ हैं ? आपके बीबी-बच्चे भी तो…।"

× × × ×

स्वयं शाहजी भी धार्मिक प्रवृत्ति के थे। सन्त तुकाराम पर उनकी अपार भक्ति थी परन्तु उनका अपना एक-एक क्षण बहुत मूल्यवान था। इस समय स्वयं का कोई विचार न होते हुये भी पत्नी जीजाबाई के

अनुरोध पर शाहजी ने जुनार में सन्त तुकाराम के दर्शन करने का कार्य-क्रम बनाया।

उस युग के परम प्रसिद्ध त्यागी दक्षिण की जनता के पूज्यपाद संत तुकाराम जुनार में एक बड़े कृष्ण-मन्दिर में टिके हुये थे। वे जन-जन के कल्याण का उपदेश देते हुये देश-देशान्तर का भ्रमण कर जुनार आये थे। सभी धर्मावलम्बी, उनके दरबार में, समान भाव से श्रद्धा रखते और सम्मान पाते थे।

महाराष्ट्र वैभव शाहजी एवं परम पुनीता जीजाबाई भी अपने बाल-शिशु को लेकर उनके निकट जा पहुँचे। शाहजी एवं जीजाबाई ने उनकी चरण रज मस्तक पर लगाई। सन्त ने अनेक प्रकार से शिशु को आशीर्वाद दिया। उसको पुचकारा। उसके सर पर हाथ फेरा। कान में कुछ चुपके से कहा और तब शाहजी को सम्बोधित कर बोले :

"शाहजी ! तुम्हारा पुत्र शिवा दिक् दिशाओं में प्रसिद्धि पावेगा...।"

शाहजी ने नत् मस्तक हो एक बार फिर हाथ जोड़ दिये। जीजाबाई ने स्नेहवश पुत्र को वक्ष से चिपका लिया।

शाहजी शीघ्र ही चलने को तत्पर हुये। सन्त तुकाराम ने कहा भी :

"शाहजी ! कुछ काल मेरे पास ठहरिये। जीवन की व्यस्तता में कुछ क्षण प्रभु की प्रार्थना में भी व्यतीत कीजिये..."

आगे सन्त बाबा कुछ कहें अथवा शाहजी अपनी असमर्थता में दो शब्द प्रकट कर दें इसके पूर्व ही जुनार के एक नागरिक ने आगे बढ़कर कहा :

"शाहजी ! जहाँगीर की मृत्यु हो गई !"

"क्या ?"—स्तब्ध शाहजी के मुख से शब्द जैसे अपने आप छूट पड़ा।

"जहाँगीर मर गया।"

"........."

एक पल को सर्वत्र नीरवता छा गई। ज्यों गतात्मा के प्रति लोग सम्मान में स्वत: मौन हो गये। सन्त बाबा ने मन्त्रोच्चारण किया ज्यों भूतात्मा की शांति की कामना कर रहे हों। वह एक शाह था। न, शहंशाह था।

दूसरे ही क्षण शाहजी के मुंह से निकला :

"और शाहजहाँ ?.......वह तो यहीं जुनार में था...सन्त बाबा ! मुझे तुरन्त प्रस्थान करना है...आप इन्हें सँभालियेगा। शिवा व इन्हें शिवनेर के किले पहुँचवा दीजियेगा।" "......अच्छा मैं चला।"— सन्त बाबा तत्पश्चात् अपनी पत्नी को सम्बोधित करते हुये शिशु का मस्तक चूम कर शाहजी मन्दिर से चले गये।

× × × ×

शाह जी के सन्त तुकाराम के समक्ष यह रहस्योद्घाटन करने पर कि शाहजहाँ जुनार में ही कही आस-पास छिपा था, जुनार भर में एक हलचल सी मच गयी। कई लोगों ने तो उसकी खोज ही करना प्रारम्भ कर दी। यही नहीं शाह जी के सिपाहियों ने भी इधर-उधर कुछ छान-बीन की। शाहजहाँ जुनार में है, यह बात शाहजी जानते थे। पहले वह कोई विशेष चिन्ता का कारण नहीं था परन्तु जहाँगीर की मृत्यु के अनन्तर जो उथल-पुथल होने की सम्भावना थी उसका सीधा प्रभाव दक्षिण के वातावरण पर भी पड़ने को था; और यही शाहजी की सरगर्मी का विशेष कारण बन गया था। वैसे उस समय, शाहजी ने बीजापुर की ओर सीधे प्रस्थान किया।

जीजाबाई ने शिवा के साथ अनेक दिवस सन्त तुकाराम के सन्त-समागम में व्यतीत किये। सन्त तुकाराम यों तो संसार के माया-मोह से वैराग्य धारण किये हुये थे परन्तु बालक शिवा को वे दिन-दिन भर गोद में लिये रहते थे। उसके कानों में वे भगन्नाम के मन्त्र फूँका करते थे।

शीघ्र ही तुकाराम बाबा ने भी जुनार से प्रस्थान किया। उनके

जाने के साथ ही जीजाबाई शिवा को लेकर शिवनेर के किले में लौट आईं।

× × × ×

जुनार की छितरी हुई बस्ती को पार करके शाहजी थोड़ी ही दूर पहुँचे होंगे कि उन्हें घुड़सवारों का एक बड़ा दल आता हुआ दिखाई दिया। ये घुड़सवार खेतों को रौंदते हुये बीच से चले आ रहे थे। यह देखकर शाहजी क्रोध में भर गये। शाहजी के साथ भी चुने हुये अस्सी मराठा जवान चल रहे थे। खेतों के बीच से आने वाले घुड़सवार चूंकि अभी दूर थे इसलिये उनका पहचाना जाना कठिन था फिर भी शाहजी ने अनुमान लगाया कि वे ऐसी सेना के सैनिक हैं जिसे इस प्रान्त के अन्न और उसको खाने वालों से कोई सहानुभूति नही है और निश्चित ही वे मुग़ल हैं।

खेतों से उतर कर सवार अब सड़क पर आ गये। वे सामने से आ रहे थे। सबसे आगे वाले सवार को शाहजी ने तत्काल पहचान लिया। एक क्षण को शाहजी के मन में विचार आया—"अवसर उपयुक्त है। अपने प्रभाव को स्पष्ट और स्थाई बनाने के लिये इससे अच्छा सुयोग दूसरा नही मिल सकता।"

एक पल में शाहजी ने सामने के सवारों की शक्ति को तोला। क़तारों में दूर तक सड़क पर रुके सवारों के समूह को आँका। शाहजी ने धारणा बनाई—"भले ही सवारों की गिनती अधिक हो परन्तु शक्ति में वह भी कम नहीं है।....तख्त अभी ही ख़ाली हुआ है। दूर तक तहलका मच जावेगा। प्रसिद्धि भी काफी मिलेगी और लाभ भी...परंतु दूसरे ही क्षण शाहजी ने विचारा—अपने स्वत्व की रक्षा के लिये यह बेचारा स्वयं ही संघर्ष कर रहा है। फिर इसने महाराष्ट्रीय जनता की—दक्षिणी जनता की—कोई हानि भी नहीं की है। यही नहीं आगरा-दिल्ली की मौजूदा सल्तनत ने अभी तक दक्षिण को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया है। भाटवाड़ी का युद्ध तो मैंने स्वयं मोल लिया; दक्षिण ने

स्वतः चाहा । अब तक आगे वाला घुड़सवार बहुत पास आ चुका था। शाहजी के निकट आते ही उसने बहुत झुककर मुग़ली सलाम पेश किया । दोनों ओर के घुड़सवार ठिठुक कर यथास्थान खड़े हो गये ।

"शाहे मुग़लिया ! मेरा भी आदाब कुबूल करें ।"

"मैं अभी शाहे मुग़लिया तो नहीं ।"

"आप हैं ।" शाह जी ने कुछ व्यंगात्मक मुद्रा में कहा ।

सामने के घुड़सवारों में शोर मच गया :

"शाहे मुग़लिया ज़िन्दाबाद ।"

"शहंशाहे शाहजहाँ ज़िन्दाबाद ।"

"सल्तनते मुग़लिया ज़िन्दाबाद ।"

"अल्लाहो अकबर ।"

शाहजी के साथ मराठा घुड़सवारों में जैसे जोश भर गया । उनकी भुजायें फड़कने लगीं । उनके वक्ष फूलने लगे । उनकी साँस के चलने की तेजी ज्यों साफ सुनाई देने लगी । शाहजी ने अपने घुड़सवारों की नब्ज को पहचाना और तीखे स्वर में बोले :

"शाहजहाँ ! यह सब क्या है ।"

"एक खुशी ! एक जोश ।"

"कैसा ?......वालिद की मौत का ? या सल्तनते मुग़लिया के चिराग ग़ुल होने का ? या शहंशाहे मुगलिया की रोशनी बुझ जाने का ?······यह कैसी खुशी है ? यह कैसा जोश है ?

"मराठा सरदार ! यह बात नहीं है । आप पहले आदमी हैं जिसने मुझे 'शहंशाहे मुग़लिया' कह कर पुकारा है ।"

"वह भी शहंशाहे मुगलिया की मौत पर ।"

शाहजहाँ को शाहजी की बातचीत का ढंग कुछ रुचिकर नहीं प्रतीत हो रहा था । यों शाहजहाँ और शाहजी की आयु समान थी, यह बात शाहजहाँ जानता था परन्तु शहंशाह बनने का जो ख्वाब पूरा होते हुये

वह आज देख रहा था उसकी ठसक उसमें आ जाना स्वाभाविक था। इस समय जैसे वह भाटवाड़ी का युद्ध भूल रहा था जिसमें इसी मराठा सेनापति ने उसकी रक्षा की थी। उसे बन्दी होने से बचाया था। एक भारी युद्ध मोल लिया था अन्यथा वह अपने भाई के द्वारा पकड़ कर बन्द कर दिया जाता।······इसके अतिरिक्त हिन्दोस्तान की इतनी बड़ी सल्तनत के शाह होने की खुशी अपने पिता की मौत के ग़म से कहीं अधिक महत्व रखती थी। वही तो मुग़ल बादशाहत का एक सलीक़ा—एक ढंग, एक रिवाज रहा था। जो रिवाज़ मुग़ल शहंशाही में चला और खूब चला। जो, यों कहिये, मुगल शहंशाही का ही रिवाज़ नहीं तमाम दुनियाँ की बादशाहत का रिवाज़ है। इससे तमाम दुनियां का इतिहास भरा पड़ा है। ऐसे में इंसानियत मिट जाती है। ऐसे में पिता-पुत्र का प्राकृतिक सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। पिता ऐसी वस्तु के चले जाने का दुःख चला जाता है। बस, ऐसे में रिश्ता रह जाता है बादशाहत के हकों और झगड़ों का। अस्तु;

उस ठसक में एक पल को शाहजहाँ ने चाहा कि वह इस मामूली सरदार को शहंशाहे मुगलिया से बातचीत करने के तौर-तरीके समझा दे, सिखा दे······परन्तु उसे तुरन्त ध्यान आया—"यह मौक़ा उलझने का नहीं है। वक्त बरबाद करने का नहीं है। उसे जल्दी ही घर पहुँचना है।······और अभी वह अपने ही मुँह मियाँ मिट्ठू बन रहा है। पता नहीं आगरे पहुँच कर क्या हालात हों।····· हो सकता है इस मराठा सरदार की उसे कभी ज़रूरत ही पड़ जाये। राजनीतिक बुद्धि तो पल-पल पर काम करती चलती थी, न।······सबसे बड़ी बात—"भाटवाड़ी में इसने बड़ी सहायता की थी।"

अतः, शाहजहाँ ने विनम्रता सहित कहा :

"यह इन सिपाहियों की नादानी है। मेरे रंज को ये लोग क्या जान सकते हैं? ये तो······"

"होगा। चलिये छोड़िये मुग़लेआज़म ! यह बताइये किधर कूच किया ? आगरा।"

"मराठा सेनापति ! हालात तो आप सब जानते ही हैं।"

"क्या मैं आपकी कुछ मदद कर सकता हूं ?"

शाहजी ने भी स्थिति को पलटा।

"मैं जानता हूं। ज़रूरत होगी तो मदद क्या ?···मदद क्या ? अपने साथ रक्खूंगा।" "ज़रूरत होगी तो साथ रक्खूंगा"—बात पर शाहजी ने गौर किया परन्तु उसे सुनी-अनसुनी करके वे बोले :

"मैं तो चाहता हूं कि······।"

"मुझे मालूम है। मुझे मालूम है। मैं जानता हूं कि दक्खिन की सल्तनतें जनाब के साथ अच्छा सुलूक नहीं कर रही हैं। मैं जानता हूं कि जनाब का गुज़ारा न निज़ामशाही में है न आदिलशाही में। ····· जनाब बेफिक्र रहें। वक्त आने पर मैं जनाब को बुलाऊँगा।"

शहज़ादा शाहजहाँ को उस समय कितनी जल्दी थी यह शाहजी को भली प्रकार विदित था। शाहजी के ध्यान से जो उस समय की वस्तु स्थिति थी उसके अनुसार उनके हृदय में भी यह विचार अनेक बार हिलकोरें ले चुका था कि क्यों न मुग़लशाही को अपनाया जाये ? वस्तुत:, दक्षिण की आदिलशाही और निज़ामशाही से वे ऊब चुके थे और इतनी दौड़-भाग, कशमकश तथा लड़ाइयों में वे, अपना कुछ भी न बना पाये थे। अपने के अर्थ में उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं भी था परन्तु दक्षिण के उन निर्बल शासकों के बीच वे अभी तक किसी शक्तिशाली प्रभुता की स्थापना नहीं कर पाये थे।

शाहजहाँ और अपने बीच हुई वार्ता के आधार पर, इस क्षण, भावना कुछ बदल चुकी थी। शाहजी में इस समय वह तेजी नहीं थी जो पहले ही क्षण मुग़ल शहज़ादे को देखकर हुई थी। वे सोच गये—सम्भवत: मुग़लशाही से कभी कोई समझौता करना ही पड़े और तभी

उन्होंने बातचीत के बन्द हो जाने पर अपनी तलवार को तीन बार झुका-झुका कर शाहजहाँ को आदाब अर्ज की।

"मराठा सेनापति की दोस्ती की मैं हमेशा ख्वाहिश करूँगा"— शाहजहाँ ने मुस्कराते हुए शाहजी की सलामों के उत्तर में कहा।

"ज़रूर-ज़रूर। सफर खुशनुमा हो," कहते हुए शाहजी ने अपने घोड़े को ऐड़ दी।

शाहजी और शाहजहाँ दोनों के सैनिक दल बराबर से निकल गये।

: ५ :

मूसलाधार पानी बरस रहा था। रात्रि का समय था। चारों ओर घोर अँधेरा छाया हुआ था। प्रकृति भी विचित्र है। जब भी वर्षा आती है, अँधेरा साथ लाती है। जब कभी धूप साथ होती है तो वह विचित्र लगता है। आँसू जब टपकते है तो मन में एक उदासी, एक कोहरा, कभी कोहराम छाया रहता है। जब कभी आँसुओं में हँसी भी साथ होती है तो वे प्रसन्नता के भ्रम में एक अनोखापन लिये रहते हैं। कभी ऐसा भी होता है कि वर्षा की उदासी, उसका कोहरा, उसका कोहराम घिरा होता है लेकिन पानी की एक बूँद नहीं टपकती। और आँसुओं की भी उदासी, कोहराम तथा कोहरा छा जाने पर एक मोती भी बाहर नहीं निकलता। इस समय वर्षा की उदासी, उसका अँधियारा, तूफान, कोहराम, एक तेजी, एक तीखापन, एक चिड़चिड़ाहट चारों ओर छाया हुआ था रात इतनी अँधियारी थी कि जैसे आसमान में काली नागिन ने अपना फन फैला कर संसार को अपने साये में लपेट लिया था। और उसकी लपलपाहट तेज़ बिजली के रूप में पल-पल में चमक जाती थी। अँधियारा एक सन्नाटा लिये रहता है परन्तु पानी की तेजी का शोर, उस समय, सब दिशाओं को सुन्न किये था और ऊपर से जो दूर जंगल के खूँख्वार जानवरों की हुंकारें दिल को दहला रही थीं उससे

कान फटने पर भी दिल में सन्नाटा घिर रहा था। शिवनेर का एकान्त क़िला तूफ़ानी वर्षा से घिरा हुआ था जिससे उस बीहड़ रात में एक डरावना पन सा सिमटता चला आ रहा था। उसपर दूर तक घिरे उस भयावने जंगल की गुफाओं और पहाड़ी गड्ढों में दबे-छिपे बैठे जीव-जन्तु जब अनायास चीख़ पड़ते थे तो एकाकिनी जीजाबाई का मन भी कभी थर्रा जाता था। यों उनमें अदम्य साहस था, महान् आत्मबल परन्तु उस कठोरता में ममत्व की कोमलता हृदय में एक कंपन सा उत्पन्न कर देती थी। वे जगी बैठी थीं और उनका नन्हा मुन्ना प्रगाढ़ निन्द्रा में निमग्न था। उसे यह ज्ञात नहीं था कि माँ के उसके निकट होने के अतिरिक्त संसार में कुछ और भी हो सकता है। वर्षा भी हो सकती है। माँ के आँसू भी आ सकते हैं। आँसुओं की उदासी, कोहरा, कोहराम भी घिर सकता है पर आँसू एक भी नहीं निकल सकता। शिशु की वह अबोधता ही माँ का एक बड़ा सहारा थी। वैसे वर्षा के अँधियारे का वह एकाकीपन, वह विरह, पति का वह अभाव मन की असीम पीड़ा का कारण बना हुआ था।

महल के उस खामोश कमरे में दो दीपदान प्रकाश कर रहे थे। मन की उस कंरोचन में जीजाबाई थोड़ी-थोड़ी देर में अपने शिवा को निहार लेती थीं।

कई महीनों से शाह जी की कोई सूचना नहीं मिली थी। शिवनेर के क़िले के कर्मचारियों व दासियों के अतिरिक्त नारो विमल हनुमन्ते तथा गोमा जी नायक पानासम्बल उनकी व शिवा की विशेष परिचर्या किया करते थे। शाह जी ने इन दो मराठा वीरों को जीजाबाई की सेवा तथा शिवा की देख-रेख के लिए जुनार से जाते समय छोड़ दिया था।

जीजाबाई रूढ़ियों की मानने वाली और अत्यधिक धार्मिक प्रकृति की नारी थीं। उनके पिता लुख जी यादव देवगिरि के यादव राजाओं के उत्तराधिकारियों में से थे। इसके अतिरिक्त उनको निज़ामशाही सल्तनत से बड़ी जागीर, सेना का बड़ा पद तथा सरदारी प्राप्त थी।

इस प्रकार राज्य-घराने की पुत्री होने के कारण, परम्परागत, उनमें उसी प्रकार की सौम्यता,गम्भीरता, कुलीनता अधिक मात्रा में थी ।

उस घोर वर्षा और गहरी अँधियारी रात में शिशु का कुछ अनिष्ट न हो इस कारण जागते रहकर वे शिवाभवानी का जाप करती जाती थीं । यों शिवा एक बार भी वर्षा के गर्जन से चौंका नहीं फिर भी दूर पहाड़ी पर से किसी चीत्कार का स्वर सुनकर जीजाबाई बच्चे पर ममता का कोमल, मृदु हाथ रख देती थीं ।

एक क्षण पुत्र पर हाथ रक्खे ही रक्खे उन्हें स्मरण हो आया पति का । अतीत की स्मृतियाँ जागृत हो उठीं। बीती बातों के तार बहुत दूर तक खसकते चले गये ।

उन्हें याद आ गई अपने बचपन की बात जो उनके हृदय में हर समय ताज़ी रहती थी और कल की सी लगती थी जिसे उन्होंने अपने विवाह की स्मृति के रूप में मन में धरोहर बनाकर रख छोड़ा था ।

तब उनका विवाह नहीं हुआ था । विवाह की चर्चा कैसे चली यही घटना के रूप में उस स्मृति से वह जुड़ी हुई थी ।

'वह होली का दिन था । सर्वत्र अबीर-गुलाल उड़ रहा था । रंग खेला जा रहा था । महाराष्ट्र में होली सदा-सदा से बड़े उत्साह से मनाई जाती थी । उनके पिता लुख जी ने अनेक परिचितों, मित्रों, स्वजनों को अपने यहाँ एकत्र कर रक्खा था । उस भीड़ में उनके श्वसुर मालो जी भी थे । और वे अपने साथ ···· '

इतना सोचते-सोचते जीजाबाई उस एकान्त में अपने आप मुस्करा दीं । उन्होंने अपनी साड़ी का छोर दाँतों में दाब लिया । ओठों की मुस्कराहट में मन भी खिल उठा । उन्हें याद आ गयी अपने पति—शाह जी की बाल-छवि । उस समय वे अपने पिता के साथ उनके घर गये थे ।

'उस सजे-बजे छोकरे को उनके पिता यादवराव ने बहुत पुचकारा-दुलराया ।'

'कुछ ही देर में वहाँ होली का हुड़दंग शुरू हो गया । और उसने भी—उनके साथ खूब होली खेली । (जीजाबाई और शाह जी होली में तर हो गये ।) हरे रंग की उसकी छोटी सी रेशमी साड़ी और दूधिया सफेद चोली को उन्होंने लाल-पीले रंग में भिगो दिया····· और हम लोग थे छोटे-छोटे, बहुत छोटे कि······किसी दिन इतना बड़ा शिवा भी होगा । ऐसे ही होली खेलेगा—और उमंग में भरकर जीजाबाई ने शिशु का माथा चूम लिया । तत्काल ज़ोर की बिजली कड़की । सब कुछ चौंधिया गया और फिर वही कालापन और अँधियारापन । ······और उसी प्रकार जीजाबाई ध्यान करती चली गयीं—'तब बापू ने—उसके पिता ने—हम दोनों को देखा । बेहद खुश हुए । हम दोनों को सामने खड़ा किया । दोनों के कन्धों पर अपने दोनों हाथ टिका दिये । वे भी रंग और अबीर में सराबोर थे । साथ के बाक़ी लोग भी जैसे चेहरों से पहचाने ही नही जाते थे । ऐसी उन्होंने होली खेली थी । तब सभी को सम्बोधित कर बापू ने कहा :

"कैसी सुन्दर जोड़ी है ? अगर इसी तरह इन दोनों की शादी कर दी जाये तो कितना अच्छा होगा ।"

'इनके बापू भी कहीं वही खड़े थे । उनके आनन्द का तो ठिकाना न रहा । उनके विशेष हर्ष का एक कारण था । कितने खिलखिलाते रहे थे, उस क्षण श्वसुर जी, देर तक । हमारे ही यहाँ काम करते थे, न । उनके लिये तो मुझे पाना एक बड़ी बात थी और उसी जोश में वे दोहरा गये :'

"भाइयो ! सुन लीजिये ! यादवराव ने आज अपनी बेटी की सगाई शाह से कर दी है । ' सुन लीजिये ।"

'पता नहीं उन्होंने उस बात को दो बार क्यों दोहराया लेकिन यों अर्थ उनका यही था कि सब लोग साक्षी रहें कि कहीं यादवराव बात से पलट न जायें । परन्तु बापू ने उस बात का बुरा माना । बुरा नहीं,

बहुत बुरा माना और उसी दिन श्वसुर जी को अपने काम से उन्होंने अलग कर दिया।'

जीजाबाई आगे सोचती चली जा रही थीं। कुछ ऐसी ही बात उस समय याद आ गई थी और याद आती चली जा रही थी कि उस एकाकीपन में भी उनका मन लग रहा था। जीजाबाई ने एक बार शिवा को देखा और सोच कर मुस्करा दीं—'यह पगला सो रहा है। इसे क्या पता कि इसके माता-पिता की शादी में कैसे क्या हुआ ?... और जीजाबाई अपने आप में देर तक हँसती रहीं।' कभी उनका रूप सुघर-सलोना था। गोरा रंग, पतली, लम्बी ठोड़ी, फैली हुई बड़ी सी आँखें। और अब तो यौवन का वह तेज मन्द पड़ गया था। नेत्रों के निकट पतली-पतली सी सलवटें पड़ गई थीं। वे सोचती रहीं—'उनका वैवाहिक जीवन कुछ बहुत सुख में नहीं बीता था। यों उन्होंने किसी कष्ट-कठिनाई का कभी कोई दुःख नहीं माना। अब भी नहीं मान रही थीं। भले ही उसके बापू का कुल राजसी था। संपन्न था। परन्तु उसने अपने भाग्य को सराह लिया था; जब शाह जी जैसा पराक्रमी पुरुष उन्हें पति रूप में प्राप्त हुआ था।' तो...

ध्यान करते-करते जो वे बहुत आगे बढ़ आयीं थीं, पीछे लौट गयीं। 'उसके श्वसुर मालोजी और उनके भाई विटो जी हमारा घर छोड़कर अपने पुराने निवासस्थान एलोरा चले गये और खेती बाड़ी करने लगे। मैं तो छोटी ही थी। मुझे इन सब बातों का कोई ध्यान भी नहीं था। हाँ, हम साथ खेलते थे इसलिए कभी-कभी 'इनका' अभाव अखरता था। याद आती थी। ... तब 'इनके' पिता एक दिन खेत में कुछ काम कर रहे थे वहाँ उन्होंने एक सर्प देखा।' 'इनके' पिता को कुछ ऐसा विश्वास जमा कि जहाँ सर्प होता है वहाँ लक्ष्मी होती है। धन के लिए उन्होंने धरती को खोदना प्रारम्भ कर दिया और सात भारी-भारी बर्तनों में उन्होंने सोना और स्वर्ण-मुद्राएँ भरी हुई पा लीं। अब तो भाग्य पलट गया। घोड़े खरीदे गये। घोड़ों का सामान खरीदा गया। डेरे-तम्बू

खरीदे गये और एक हज़ार बरगिरों—सैनिकों—की एक सेना उन्होंने तैयार कर ली। उनका बड़ा नाम होने लगा। दान भी उन्होंने बहुत किया। मन्दिर बनवाये। ब्राह्मणों को भिक्षायें दीं। शम्भू महादेव पहाड़ी पर एक भारी सा तालाब बनवाया जहाँ हर साल हजारों दर्शनार्थी और धार्मिक लोग इकट्ठे होने लगे। श्वसुर जी का समाज में भी नाम हुआ और निज़ामशाही में भी। उन दिनों निज़ामशाह तो उनसे इतना प्रभावित हुआ कि कि उनकी पूरी एक हजार वरगिरों की सैन्य-शक्ति सहित उसने उन्हें अपने यहाँ अच्छे पद पर नौकर रख लिया। निज़ामशाही ने उन्हें पूना और सूपा की जागीरें लिख दीं। इससे तो उनकी मान-प्रतिष्ठा के साथ उनकी धन-सम्पत्ति भी खूब बढ़ी और अब उन्होंने मेरे बापू से मुझे माँगा। निज़ामशाह ने भी बापू पर ज़ोर दिया और हमारी शादी हो गई।…' इस समय जीजाबाई में जैसे लज्जा भर गयी और उनके उस अशक्त चेहरे पर लाली दौड़ गयी। वे सोचती रही—'वे ही तो वे बरगिरे और सरदार लोग थे जो श्वसुर जी के मरने के बाद इन्हें—शाहजी को मिले थे। निज़ामशाही से मतभेद होने पर इन्होंने उन बरगिरों को—सिपाहियों को—शिवनेर में रख छोड़ा था। वे ही तो थे जो उसके इस क़िले में आने वाले दिन यहाँ से गये थे।'

और तब उन्हें ध्यान आया—'विवाह के अनन्तर वे एक स्थान पर गृहस्थी बना कर कभी ठीक से न रह पायी। बापू और श्वसुर जी तथा 'इनमें' खटपट रहने लगी। बापू ने निज़ामशाही छोड़ दी।' और तब उन्हें स्मरण हो आया अपने उन चार पुत्रों का जो पैदा हो—हो कर मरते चले गये। तभी उनके नेत्रों में आँसू छलछला आये। पल्ले से उन्होंने आँसुओं को सुखाया और मन को शान्त किया। इस समय उन्हें अपने बड़े पुत्र शम्भाजी की याद आयी थी।' वह भी कहीं लड़ता-भिड़ता घूमता होगा। न पति निकट रहते हैं न पुत्र। अब तो एक मात्र सहारा यह शिवा है—और एक बार फिर उसे देख कर उन्होंने

उसका मस्तक चूम लिया ।

इस समय तक वर्षा थम गयी थी परन्तु कटीला अँधियारा सर्वत्र घिरा हुआ था । थोड़ी-थोड़ी देर में बादल गरजते थे और बिजली कड़क जाती थी । वह समूची रात जीजाबाई ने जाग कर ही बिताई ।

× × ×

इस प्रकार जाग कर, रोकर, हँसकर, स्मृतियों की आहें भर-भर कर माँ ने पुत्र का लालन-पालन किया । वे अपनी राम-कृष्ण-भक्ति में ओत-प्रोत, दिन-दिन भर रामायण पढ़तीं । गीता पढ़तीं । महाभारत पढ़तीं । उस शिशु के कानों में रामायण के अनेक अंश गुनगुना देतीं । शिवा टुकुर-टुकुर माँ को निहारा करता और सब सुनता । प्रतीत होता जैसे सब समझ रहा है । तब वे उसे उठाकर भवानी के मन्दिर पहुँचतीं । वहाँ घंटों बैठी रहतीं । शिवाभवानी से पुत्र की मंगल कामना करती रहतीं ।

वे चार पुत्रों को खो चुकी थीं अतः बहुत घबड़ाती रहती थीं । शिवा की मुद्राओं में कभी तनिक भी अन्तर पातीं तो सिहर उठतीं । क़िले भर को सर पर उठा लेतीं । तमाम कर्मचारियों को दौड़ा डालतीं । दासियाँ हाथ जोड़े पास खड़ी रहतीं । परन्तु उन्हें उस समय अपने पास खड़े दास-दासी अच्छे नहीं लगते । वे पति के दर्शन के लिए उस क्षण छटपटा जातीं । तब वे मन में कहतीं–"आओ ! अपने इस लाड़ले को सँभालो । मैं तो थक सी रही हूँ ।"

परन्तु उनमें थकन कहाँ ? ऊब कहाँ ? वे तो अधिक तत्परता से शिशु की देख-भाल करतीं । वही तो उनकी एकमात्र आशा थी, एक सहारा ।

और ऐसे ही में उन पर एक दिन वज्र टूटा । उनका जीवन अब अधिक शोकाकुल होगया ।

उस अँधियारी रात्रि के उपरान्त सबेरा हुआ । वे बालक शिवा को लेकर महल के आँगन में बैठीं । उसके सामने लकड़ी के खिलौने

लुढ़का उठा रही थीं। ये खिलौने कल ही हनुमन्ते जुनार से लाया था। शिवा उन्हें देख-देख कर किलकारियाँ मार रहा था। माता उसे देख कर मुस्करा रही थी।

रात की भारी वर्षा के बाद सब ओर गीला-गीला हो रहा था। धरती पानी से तर थी परन्तु सुबह के साथ ही जो धूप निकली थी उससे महल के पत्थर सूख गये थे और आँगन भी सूख रहा था। ऐसे ही में हनुमन्ते सामने आया ओर बोला—"पूना से एक आदमी आया है। मेरा सम्बन्धी है। मेरे ही पास ठहरा है।"

"कब आया ?"—जीजाबाई ने तत्परतापूर्वक प्रश्न किया—"कोई विशेष सूचना ? वे कहाँ हैं ?"

"वह कल शाम आया था।"

"उसका कुछ सत्कार किया।"

हनुमन्ते ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसका चेहरा उदास हो गया था। वह शिवा को खिलौनों से खिलाने लगा परन्तु वह एक व्यग्रता थी जो उसके चेहरे पर झाँक रही थी।

जीजाबाई ने ध्यान किया कोई विशेष बात है और तभी उन्होंने पुनः प्रश्न किया :

"कोई ख़ास बात है, हनुमन्ते ?"

"हाँ -"

"क्या ?"

"शाह जी ने दूसरा विवाह कर लिया।"

"तो इसमें दुःख की क्या बात है ?"

जीजाबाई कहने को तो कह गयीं परन्तु उनके हृदय में कुछ ऐसा सा होने लगा कि किसी ने कुछ बाहर खींच लिया या पारे सा भारी बोझ खून में पिघला कर उनकी रग-रग में भर दिया।

: ६ :

इन दिनों शाहजी आदिलशाही सल्तनत में सेना के उच्च पद पर कार्य कर रहे थे। उनकी नव-विवाहिता, सुन्दर और नवयौवना पत्नी तुकाबाई उनके साथ थी। कुछ समय के लिये जीवन आनन्द-उपभोग में बीत रहा था। शाहजी का व्यक्तित्व आकर्षक था। वे हट्टे-कट्टे और सदा तने हुये योद्धा दिखाई देते थे। आदिलशाही दरबार की पूरी दरबारी पोशाक पहनकर जब वे इब्राहीम आदिलशाह के सामने दमक कर चलते थे तो दरबार के दूसरे सरदार ईर्षा में जल उठते थे। दरबार में उनका बहुत दबदबा था। निजामशाही को तिलाञ्जलि देकर आदिलशाही के पास आने के कारण लोग उन्हें विशेष महत्व दिये हुये थे।

जीवन के नवीन आनन्द लेते हुये जो उनका समय वैभव-विलास में व्यतीत हो रहा था उसमें कभी-कभी उन्हें अपनी पहली पत्नी जीजाबाई की दु:खी आकृति और बालक शिवा का मासूम चेहरा जब याद आता तो वे स्वयं में अशान्ति और लज्जा का अनुभव करते थे। निर्णय के आवेग में व्यक्ति कभी-कभी अनियमित भी कर बैठता है परन्तु बुद्धि परक लोग अपनी असावधानी का ध्यान भी अवश्य करते हैं और यही उनमें सद्‌गुण का लक्षण होता है। शाहजी यह अनुभव अवश्य करते थे कि उन्होंने जीजाबाई के साथ अन्याय किया है। अपने पुत्रों के अधिकारों

को चोट पहुँचाई है परन्तु जो हुआ सो हो गया। वह तो लौटता नहीं था। हाँ, खेद-उनके हृदय में अवश्य बना रहता था। भावोद्रेक में उन्होंने कभी विचारा भी कि जीजाबाई और शिवा को पास बुला लें परन्तु वे यह ध्यान कर रुक गये कि कहीं स्थिति गृह-कलह की न बन पड़े। कुछ समय तक अपनी नवयौवना पत्नी के रूप-यौवन का उपभोग, तो शान्ति पूर्वक, उन्हें करना था अतः जीजाबाई और शिवा शिवनेर के क़िले में ही रहने को विवश बने रहे।

हाँ, आदिलशाही में रहते हुये भी उन्होंने अपनी पूना की जागीर को व्यवस्थित बनाये रक्खा था।

इब्राहीम आदिलशाह ने उन्हें एक अलग महल दे रक्खा था जिसमें वे सुखपूर्वक रह रहे थे। वे जब दरबार में आते तो आदिलशाही सेना की शाही पोशाक में उन्हें कोई मराठा कह ही नहीं सकता था। हाँ, उनके माथे पर सदा रोली का टीका लगा रहता था जिससे ही वे पहचाने जाते थे।

एक दिन वे इसी प्रकार बीजापुर दरबार में कार्य व्यस्त थे तभी उन्हें सूचना मिली कि उनके श्वसुर लुखजीयादवराव तथा उनके पुत्र अचल जी एवं रघुजी साथ ही पौत्र यशवन्तराव को निजामशाह ने खुले दरबार में क़त्ल करवा दिया है। इसके अतिरिक्त लुखजी के भाई जगदेव राव एवं पुत्र बहादुर जी ही किसी प्रकार बचकर सिंधखेड़ की ओर भाग गये है। इस प्रकार समूचे परिवार के इस नृशंस हत्याकांड का समाचार ज्ञात कर शाहजी का खून खौल गया। निज़ामशाही को उसके इस कुकृत्य का मज़ा चखाने के लिये शाहजी कटिबद्ध हो गये। उनको अधिक आवेश तब आया जब उन्हें ज्ञात हुआ कि उन मृतकों का केवल क़सूर इतना था कि वे निज़ामशाही को छोड़कर मुग़लों की मनसबदारी प्राप्त कर रहे थे। इसी पर निज़ामशाह ने सम्पूर्ण परिवार को धोखे से दरबार में बुलाया और क़त्ल करवा दिया।

अब क्या था, शाहजी ने निज़ामशाही से बदला लेने के लिये योज-

नायें बनाना प्रारम्भ कर दीं। शाहजी अपनी शक्ति का संचयन चुपचाप कर ही रहे थे कि आदिलशाही सुल्तान मुहम्मद आदिलशाह की भी उन्हीं दिनों मृत्यु हो गई। मुहम्मद आदिलशाह शाहजी का अत्यधिक सम्मान करता था।

इस पर बीजापुर से शाहजी का मन उचाट हो गया और वे वहाँ से जाने की व्यवस्था करने लगे परन्तु बीजापुर छोड़ने में एक अटकाव था और वह था—तुकाबाई का। इस प्रकार की अस्थिरता-अव्यवस्था में एक पत्नी-पुत्र को तो उन्होंने अज्ञातवास में रख ही छोड़ा था अब तुकाबाई को वे उस स्थिति में पहुँचाने के पहले बहुत कुछ सोच रहे थे। इधर उनका बड़ा पुत्र सम्भाजी भी इन दिनों उनकी ही व्यवस्था में बीजापुर में ही रह रहा था परन्तु उसे भी उन्होंने अपने महल से पृथक एक दूसरे स्थान में रख छोड़ा था।

उनकी भुजायें फड़फड़ा रही थीं। निज़ामशाही से बदला चुकाने के लिये तभी बीजापुर से कुछ दूर उन्होंने अपनी व्यक्तिगत सैन्य-शक्ति का पूर्ण गठन कर लिया।

पत्नी तुकाबाई की बीजापुर में पूर्ण व्यवस्था करके अन्ततः शाहजी ने निज़ामशाही के विरुद्ध विरोध का झंडा उठा लिया। शाहजी ने अपने चुने हुये जवानों को लेकर निज़ामशाही के विभिन्न प्रदेशों को जीतना प्रारम्भ कर दिया। पहले शाहजी ने पूना से चकन तक का सम्पूर्ण प्रदेश अपने अधिकार में किया और तब वे अहमदनगर व नासिक की ओर बढ़े। थोड़े ही समय में उन्होंने अहमदनगर और नासिक के निकटवर्ती स्थानों को विजित किया तथा इधर-उधर चारों ओर लूट पाट प्रारम्भ कर दी।

निज़ामशाही तिलमिला उठी किन्तु विवश थी क्योंकि सल्तनत में स्वतः ही अनेक उलट-फेर हो रहे थे। अनेक ओर से विद्रोह का भय दिखाई दे रहा था। लुखजी यादवराव कुल की हत्या करके तो जैसे निज़ामशाही ने अपने ऊपर विपत्तियों के पहाड़ खड़े कर लिये थे।

दक्षिण में यह सब हो रहा था तभी शाहजहाँ ने अपने भाई शहरयार को कुचल कर मुग़ल शहंशाही का ताज पहना ।

× × ×

शिवनेर के क़िले में भी आज दुःख की बदली घिर आयी । जीजाबाई के महान शोक का ठिकाना नहीं रहा जब उन्हें सूचना मिली कि उनके प्यारे बापू जी और दो भाइयों की हत्या कर दी गयी है। उनके चाचा व भाई अनिश्चित स्थान को भाग गए हैं । जीजाबाई को अपने मायके का स्मरण हो आया । कैसे सुखमय थे वे दिन ? कितना स्नेह करते थे उनके पिता ? कितनी सम्पन्नता थी ? कैसा वैभव विराजता था उस परिवार में ?

"महल में एक पंडित सदा बना रहता था जो नित्य रामायण पाठ किया करता था । बापू जी घर की सब स्त्रियों, बच्चों व कुटुम्बीजनों को लेकर बैठ जाते थे । तीन घंटों के पहले न उठते थे न किसी को उठने की अनुमति थी । तब राजा रामचन्द्र जी की कथा का पाठ होता था । बड़े ध्यान मग्न हो बापूजी सुनते थे । आतंक नहीं, घर में उनके प्रति इतना आंदर था कि उनके सामने आने में सभी को जैसे सदा संकोच बना रहता था । कितना मोह था उन्हें उसकी माता से ?

"परन्तु हत्भाग्य ! आज उसके पिता इस संसार में नहीं हैं । ऐसे सात्विक, धार्मिक और सरल प्रवृत्ति के व्यक्ति राजनीति की उदण्डता, निर्दयता, अनाचार, अत्याचार, विभीषिका, के शिकार हो गये ।

"और उसके वे प्रिय भाई ! ओह ! "मेरे प्यारे अचलो ! रघु ।"··· कहते-कहते जीजाबाई फफक कर रो पड़ी ।

सचमुच कितना शोक, कितनी निरीहता, कितना दुर्भाग्य था उस नारी का—सब ओर अंधकार, निराशा, कारुणिक विभीषिका, विडम्बना······

निकट ही बालक शिवा अपने दोनों हाथ धरती पर टेके बैठा था । शिवा अब बैठने लगा था । रोते-रोते जीजाबाई की दृष्टि पुत्र पर जा

पड़ी। उनके हृदय में एक ललक भर गई। वे अपने दुःख के पहाड़ भरे मन को बदलना चाहती थीं तभी उन्हें ध्यान आ गया—उफ ! वह प्यारा यशवन्त भी उन राक्षस हत्यारों से न बच सका। कैसा सलोना था वह। युवावस्था पाकर तो उसके व्यक्तित्व में बड़ा निखार आ गया था और जब वह बग़ल में तलवार बाँध कर, सुनहले काम का सफेद अंगा पहन कर धीमे-धीमे चलता था तब कितना सुघर लगता था ?"

जीजाबाई को स्मरण आया—"अभी पिछले दिनों जब वे मायके में थीं तो कितना भरा-पूरा था—वह कुटुम्ब। सब नष्ट हो गया।" रोते-रोते जैसे आँखों में ही आँसू ठहर गये और उस सूनी उदासी में इस समय जो देखतीं, तो जीजाबाई, एकटक, एक दिशा की ओर देखती ही रह जातीं।

तभी उन्होंने विचारा—अब निज़ामशाही से बदला भी लिया तो क्या बनेगा ?—वे अपने पति शाहजी का ध्यान कर सोचती जाती थीं—। पूरी निज़ामशाही नहीं। त्रिलोक का राज्य-वैभव मिल जाय या सृष्टि के मानवों को तलवार के घाट उतार दिया जाए तब भी क्या ऐसी क्षति पूरी हो सकती है ? कभी नहीं।'

अनायास ही उन्हें ध्यान आया—उनके पिता का चित्र उनके पास है। वे चाहती थीं इस समय किसी से चिपट कर रो लेना परन्तु वहाँ तो कोई भी नहीं था। क्या उस मासूम बालक को गले से चिपटा कर रोतीं ? क्या प्रभाव पड़ता उस कच्ची टहनी से मुलायम बालक पर ?

और पिता के चित्र का ध्यान कर वे स्थान से उठीं उन्हें यह ध्यान ही न था कि दासी मीराजी उनके पास आकर बैठ गई है। यों कोई दूसरा समय होता तो उन्हें पहले मीरा जी से दो-चार मिनट बात कर लेनी पड़ती तब वे अपना कोई दूसरा काम करतीं। मीराजी कुछ इतनी ही बातूनी थी। साथ ही बेहद मस ख़री भी। बोलते समय मीराजी मुँह से सी०-पी०, सी०-पी० करती जाती और बहुत बकवास करती थी। ऐसा लगता था जैसे उसके ओठों और जीभ में तेज़ लाल मिर्चें जल रही

हों। वैसे वह अपने दक्षिण वालों की भाँति मिर्चें बेहद खाती भी थी। इधर वह बहुत तंग थी। वह नित्य ही दिन में दो-तीन बार हनुमन्ते का शिकायत जीजाबाई से करती थी। जीजाबाई मुस्करातीं और चुपचाप सुनती रहतीं। वे अपनी टीका टिप्पणी कभी कुछ न करती थीं।

कभी ऐसा होता कि मीराजी आती और चुपचाप बैठ जाती। तब वह शिवा को गोद में ले लेती या किसी काम में लग जाती। जब वह देर तक कुछ न बोलती तो जीजाबाई उसे छेड़कर बुलवातीं :

"क्यों री ! हनुमन्ते कहाँ है ?"

अथवा—

"मीराजी ! आज हनुमन्ते तेरी शिकायत कर रहा था। कह रहा था कि—

और बस मीराजी तेज़ हो जाती। उसकी बोलने की गति जैसे ऊपर पहाड़ से गिरते झरने की तेज़ी से जा मिलती।

आज तो मीराजी हनुमन्ते के विरुद्ध बहुत गम्भीर आरोप लेकर आई थी परन्तु उसने जीजावाई को रोते देख स्वयं दम खींच लिया। वह उनसे अधिक उदासी में चुपचाप शिवा के पास बैठ गयी। उसकी उस उदास आकृति को देखकर ऐसा लग रहा था कि वह भी रो देगी। उस रोनेपन को देखकर जीजाबाई अपनी हँसी न रोक पायीं। उस विषम वेदना में भी उनके ओठों में परिहास तैर गया।

"क्या है री मीराजी ?"—कहते हुए वे अपने आसन पर पुनः बैठ गयीं। उनका मन इतना भर गया था कि रोने के बाद वे अब उसे कुछ हलका करना चाहती थीं। बहुत बार ऐसा होता भी है कि उस दुःख भरी हँसी में व्यक्ति अपने आप को भुलाने की चेष्टा करता है।

जीजाबाई के प्रश्न पर मीराजी निरन्तर शान्त बनी रही। इस पर उन्होंने भी समझा कि बात कुछ अधिक गम्भीर है। शिवनेर के क़िले में वे कर्मचारी ही एक प्रकार से जीजाबाई के भार स्वरूप समय बिताने

का एक मात्र आधार थे। यही कारण था कि वे उनका अत्यधिक सम्मान भी करती थीं।

मीराजी का कुछ उत्तर न पाकर उन्होंने पुनः प्रश्न किया।

"मीराजी ! क्या हनुमन्ते ने आज फिर कुछ शरारत की !"

"उँह हूं।"

"तब इतनी उदास क्यों है ? कोई बात तो अवश्य है ?"

"माँ जी ! उदास तो आप भी हैं।"

जीजाबाई ने बिना कुछ उत्तर दिये दृष्टि शून्य में टिका ली। शिवा सामने बैठा खेल रहा था परन्तु दृष्टि उनकी उसे देखकर दूर छिटक रही थी। एक गोल घेरा सा नेत्रों तक आकर लौट रहा था और समक्ष एक बिन्दु पर पहुँच कर रुक जाता था। दृष्टि की उस स्थिरता में मस्तिष्क निरन्तर चलायमान था। उसमें सभी बीती बातें घूम रही थीं। हृदय की निराशा में सामने सब काला-काला लिपा अँधियारा सा दिखायी दे रहा था। वे इतनी दुःखी हो रही थीं कि सर के भारीपन में उन्हें लग रहा था कि किसी ने शीशा पिघला कर उसमें भर दिया है। तभी उन्होंने मीराजी से कहा—

"मीराजी ! मेरा सर दाब दे।"

प्रसवकाल की निर्बलता जैसे उनमें अभी भी स्पष्ट हो रही थी ऊपर से इन प्रकट क्लेशों—शोकों का घिराव उन्हें जैसे क्षय किये डाल रहा था। उस करुणामयी, वेदनामयी, शोकमयी आकृति को देखकर दूसरों को संताप होना स्वाभाविक था।

मीराजी उठी और हौले-हौले सर दाबने लगी।

"माँ जी ! आप आज दुःखी हैं ?"

"हाँ, मीराजी।"

"क्या मैं कारण जान सकती हूं ?"

"मीराजी ! तेरे पिता हैं ?"

"नहीं माँ जी ! वे तो शाहजी सरकार के ही एक बरगिरे थे और मारे गये ।......"

कहकर मीराजी भी शान्त हो गई । देर तक मीराजी को मौन देख कर जीजाबाई ने अपना सर घुमाया । मीराजी के नेत्रों से आँसू टपक रहे थे । जीजाबाई ने अपना सर उसके हाथों से हटा लिया और बोलीं ।

"इधर आ ।"

मीराजी ने अपने हाथ वढ़ा कर पुनः जीजाबाई का सर दाबना चाहा परन्तु उन्होंने उसका हाथ पकड़ कर उसे सामने की ओर हटा लिया ।

"यहाँ बैठ ।"

मीराजी संकोच में खड़ी रही । जीजाबाई ने फिर आदेश दिया ।

"बैठ जा ।"

मीराजी बैठ गयी और उन्होंने उसका सर अपनी जाँघ पर रख लिया । वे उसके बालों पर पुत्रीवत् हाथ फेरती रहीं । मीराजी ने कई बार अपना सर हटाना चाहा परन्तु जीजाबाई उसे बलपूर्वक दाबे रहीं । वे उसके शोक को भी कम करना चाहती थीं । वे बोलीं :—

"क्यों री ! तूने बताया नही हनुमन्ते क्या कह रहा था ?"

"माँ जी ! वह बार-बार मुझसे शादी करने को कहता है ।"

"तब कर क्यों नहीं लेती । वह बुरा तो नहीं ।"

"वाह माँ जी ! आज मैंने उससे कहा—"तेरे एक पत्नी तो है ।'– तब वह बोला—'है तो क्या हुआ । तब भी तेरे साथ शादी करूँगा ।– तलवार दिखा कर धमकाता है । कहता है—'जब हमारे शाहजी दो शादी.......।"

तुरन्त जीजाबाई ने अपना हाथ उसके मुँह के आगे लगा दिया ।

× × ×

"मीराजी ! तू मेरा एक काम कर ।"

"आज्ञा दीजिये, माँ जी !"

"तू बीजापुर चली जा ।"

"बीजापुर ? ···· मुसलमानों की बस्ती में ? ·····माँ जो !"

"तू भी पागल हुई है,"—मुस्कान सहित जोजाबाई ने कहा—

"उनके कुछ हाल-चाल लाकर मुझे दे । देख तो क्या शत्रु-भय केवल मेरे ही लिये है और अब नई महारानीजी बीजापुर में रह सकती हैं । सुना है आजकल तो वे बीजापुर में हैं ही नहीं । सम्भा को भी कहीं अलग रख छोड़ा है । तब क्या वह कहीं अकेली ही रह रही है ?···"

"मुझे तो ··।"

"वे पहचानते हैं । वह तो नहीं पहचानती ।······डरती क्यों है ? रास्ते में तुझे क्या कोई खा जायेगा ? हनुमन्ते को साथ कर दूँगी ।"

"मैं हनुमन्ते के साथ नहीं जाऊँगी ।"

"तब गोमाजी छोड़ आयेगा······।"

"अच्छा हनुमन्ते को ही भेज दीजिये ।"

"यह । तुझे भी उसके बिना चैन नहीं है ।"

अगली सुबह मीराजी और हनुमन्ते ने बीजापुर के लिये प्रस्थान किया ।

: ७ :

पूना से चकन के प्रांतों पर अधिकार के बाद शाहजी ने अहमदनगर और नासिक तक के प्रदेशों पर जो विजय पताकायें फहरायीं थीं उससे उनकी शक्ति के परिचय के साथ-साथ लोगों में उनके पराक्रम और युद्ध-कौशल की भी धाक जमी। स्थान-स्थान पर जनता ने उनका स्वागत किया। उनके सैनिकों को उपहार भेंट किये। निर्बल शासक निज़ामशाह की मुक्ति से ज्यों उस ओर की जनता में हर्ष की लहर दौड़ गई। जिन स्थानों पर जनता ने उदासीनता प्रदर्शित की; वहाँ शाहजी के सैनिकों ने लूट-मार भी की तथा अधिक मात्रा में धन प्राप्त किया। युद्ध की दृष्टि से शाहजी अपनी इस योजना में अत्यधिक सफल रहे।

अहमदनगर की सीमाओं पर पहुँचते-पहुँचते उन्हें सूचनायें मिलीं कि शाह ने फतहखाँ ऐसे नीति निपुण और कुशल नायक को जेल के सीखचों में बन्द कर दिया है। शाहजी ने समझा कि निज़ामशाह की ऐसी दुर्बुद्धि उसका स्वतः नाश कर देगी। चूंकि निज़ामशाह स्वयं अपनी आंतरिक-शासन-समस्याओं में उलझा हुआ था अतः अपने श्वसुर-कुल की हत्या के प्रतिकार में इतना कुछ कर लेना पर्याप्त मानकर शाहजी लौट पड़े।

लौटने का एक कारण दूसरा भी था। समूचे युद्ध-काल में उन्हें

अपनी नव-विवाहिता नवयौवना पत्नी तुकाबाई का निरन्तर स्मरण बना रहा। विछोह की घड़ियाँ मानकर जैसे उन्होंने उस समय को किसी प्रकार व्यतीत किया। अभी विवाह को समय ही कितना हुआ था ? वे जल्दी घर भागना चाहते थे। साथ ही यों बीजापुर सल्तनत की उनके उस युद्ध-प्रयाण में नैतिक सहानुभूति भी प्राप्त थी और उसी आधार पर तुकाबाई को बीजापुर में छोड़ने का खतरा भी वे ले बैठे थे परन्तु पल-पल में उन्हें घबड़ाहट होती थी क्योंकि उन दिनों की उन दोनों सल्तनतों—निज़ामशाही अथवा आदिलशाही—पर उन्हें कोई भरोसा नहीं था। उन दोनों सल्तनतों की अस्थिर-बुद्धि, मूर्खतापूर्ण राजनीति, अनुभव शून्यता से सदा यह भय बना रहता था कि जाने कब वे क्या ऊट-पटाँग कर बैठें।

उधर दिल्ली-आगरा की शासन-सत्ता में हुई उलट-पलट को भी शाहजी तेज़ नज़रों से देख रहे थे। उन्हें सूचना मिल चुकी थी कि शाहजहाँ ने आगरे में बड़े जश्न मनाये हैं। बड़ी खैरातें बाँटीं हैं। बड़े ओहदे दिये हैं। यही नहीं आगे के लिए बड़े-बड़े मंसूबे बाँधे हैं। उसके उन मंसूबों में दक्षिण का नम्बर पहला होगा। जब जहाँगीर के समय में उस का ध्यान दक्षिण था, तब आज तो वह एक बड़ी सत्ता का अधिकारी है। तब तो वह बाग़ी था, आज तो शाहेमुग़लिया है। यों वह वचन दे गया था कि दक्षिण पर उसकी नज़र दोस्ताना होगी लेकिन ऐसे वायदों को कौन याद रखता है और फिर राजनीति में जिसका दूसरा नाम ही अस्थिरता है। वायदों से पलटना ही जिसका सिद्धांत है। समयानुकूल परिस्थितियों के अनुसार ही रास्ता बनाना जिसका काम है। बीते को भूल जाना ही जिसकी आदत है। शाहजी का दृढ़ विश्वास था कि दक्षिण की पलटती राजनीति से ही कोई बहाना लेकर शाहजहाँ अवश्य इधर कूच करेगा। तब अहमदनगर की क्या स्थिति हो और बीजापुर कौन सी करवट ले; कौन जाने ? फिर मुग़लशाही का दक्षिणी भाग और उसका अफ़गान सूबेदार खानजहाँलोदी भी विचित्र स्थिति में है। वह अलग,

रूई के गुड्डे की तरह हवा में काँप रहा है। बालाघाट को वह तीन लाख के बदले में निज़ामशाह को सौंप ही चुका है और अब भी उसके पैर बराबर डगमगा रहे हैं......"

दक्षिण की राजनीति का इस प्रकार अवलोकन करते, भविष्य के अनेक कल्पना-चित्र बनाते, तुकाबाई के कोमल स्पर्श का स्वप्नालोक में आनन्द प्राप्त करते शाहजी पूना पहुँचे। वहाँ उनका भव्य स्वागत हुआ। अपनी पूरी सेना को वहाँ उन्होंने विश्राम करने का आदेश दिया और स्वयं पूना की जागीर की व्यवस्था की नवीन योजनायें बनाने में संलग्न हो गये।

× × × ×

संध्या बीत चुकी थी। चारों ओर जैसी धवलता, जैसी शाँति, जैसी नीरवता विराज रही थी उससे लग रहा था कि रात दूधिया आने को है।

इन दिनों पूना में विशेष चहल-पहल थी। वहाँ के अधिपति शाहजी अपने सम्पूर्ण वैभव सहित पूना में विराजमान थे। मराठा सेना के रण-वीर बाजार-हाटों में घूम रहे थे। विजयोन्माद में कभी किसी दूकानदार से ठिठोली करते थे तो किसी राहगीर से उलझकर आगे बढ़ जाते थे। यों वे किसी को तंग नहीं कर रहे थे। हाँ, हँसी-मज़ाक करना ही उनका मात्र उद्देश्य था।

सिपाहियों की एक टोली बढ़ते-बढ़ते उत्तर दिशा की ओर बहुत आगे बढ़ आयी। सब मिलाकर दस बारह मराठा जवान थे और सभी पैदल चल रहे थे। तभी उन्हें दूर से दो घुड़सवार आते हुए दिखाई दिए।

कुछ ही देर में दोनों निकट आ गये। वे दोनों ही मराठा सैनिकों की पोशाक में थे। लम्बे अंगों के ऊपर कमर से बँधी पेटी के बायें ओर लटकती तलवारें और दाहिने हाथों में दोनों के बरछे बहुत फब रहे थे।

एक के अंगे का रंग सफेद और दूसरे का बहुत हल्का पीले रंग का थ जो शाम हो जाने के कारण कुछ मटीला सा दिखाई दे रहा था।

निकट आने पर पैदल सैनिकों ने दोनों घुड़सवारों को सम्बोधित कर प्रश्न किया :

"कौन हो ?"

"महाराष्ट्र गौरव शाहजी के अनुचर।"

"महाराष्ट्र गौरव शाहजी ? कौन शाहजी ? सैनिकों में से एक ने प्रश्न किया।

दो में से दाहिनी ओर वाला घुड़सवार कुछ घबड़ाया। उसने अपने पास वाले को देखा। यों चाँदनी छिटकी हुई थी। सामने ही खेतों के बीच होती हुई सीधी सड़क जुनार को जा रही थी। मन में दोनों ही घुड़सवार शंकित हुये। लगा क्या फॅस गये या किसी दूसरी बस्ती में आ गये परन्तु इतना भ्रम तो नहीं हो सकता था। तभी बायीं ओर वाले घुड़सवार ने काँपते स्वरों में प्रश्न किया :

"क्या यह पूना नहीं है।"

"पूना ? कहाँ है पूना ?"

प्रश्नकर्ता ने आवेश में चाहा कि कह दे—"तुम्हारे सर में।" परन्तु स्थिति कुछ अनुपयुक्त जानकर वह खामोश खड़ा सोचता रहा कि उत्तर दे या घोड़ा मोड़ ले। वह तो सोचता ही रह गया परन्तु साथ वाले घुड़सवार ने अपना घोड़ा मोड़ ही लिया और बोला :

"लौट चलो।"

आवाज़ कुछ धीमी, कुछ मुलायम सी सुनकर पैदल सेनानियों में से एक ने तत्काल डपट कर पूछा :

"ऐ तुम लोग कौन हो ? कहाँ से आ रहे हो ? कहाँ जाना है ? क्या यह औरत है ?"

सामने खड़े सैनिक ने तत्काल उत्तर दिया :

"इससे आपको क्या प्रयोजन कि हम कहाँ से आ रहे हैं ......?

हमें पूना जाना है और हम समझते हैं कि पूना आ गया है।"

"हमें क्या मतलब कि ये कहाँ से आ रहे है......हः हः।......... ऐ गुलमोहम्मद ! बन्द कर लो इन दोनों को। ये ज़रूर मराठा शाहजी के खुफिया हैं," कहने को तो एक सैनिक कह गया किन्तु अपनी मुस्कराहट न रोक पाया।

निकटवर्ती अन्य साथियों ने कहा :

"अधिक तंग मत करो। परन्तु......"

उनमें से तुरन्त ही एक बोल पड़ा :

"मुझे तो भ्रम हैं कि यह साथ में इसके कोई औरत ही है।"

"उससे क्या होता हैं ? कोई बरगिरे अपनी दुल्हन को इसी तरह छिपाये लिए जा रहा होगा।"

"परन्तु यदि ये निज़ामशाही के कोई भेदिए हुए तो ?"

"हो सकता है।"

पैदलवाले सैनिक आपस में कानाफूसी कर रहे थे।

उधर घुड़सवार सोच रहे थे : वे निज़ामशाही के सैनिकों के चक्कर में पड़ गए। परन्तु क्या यह पूना नहीं है ? या क्या पूना शाहजी के हाथ से चला गया ?

सामने वाला घुड़सवार इसी कठिनाई में फँसा खड़ा था कि आवाज़ आयी :

"गुल मोहम्मद। उस घोड़े की रास पकड़ो देखो, वह भागने की तैयारी में है।"

तभी दो व्यक्तियों ने आगे बढ़कर उस घोड़े की रासें पकड़ना चाहीं कि उस घुड़सवार ने घोड़ा दौड़ा दिया।

अब स्थिति कुछ अधिक गम्भीर होगयी। पैदल सैनिकों में से एक ने कड़क कर कहा :

"ऐ ! उतर घोड़े से। इसको पकड़ो जी। ये अवश्य कोई भेदिये हैं। मैं घोड़े पर आगे बढ़कर इसके साथी को पकड़ता हूं।"

"ऐसा नहीं हो सकता। मैं अपने घोड़े से नहीं उतर सकता," घुड़सवार ने भी तीव्र स्वर में ही उत्तर दिया।

"घसीट लो," की आवाज के साथ चार-पाँच सैनिकों ने आगे बढ़कर उस घुड़सवार को घसीटने के लिए हाथ बढ़ाये।

तपाक् से घुड़सवार घोड़े से नीचे कूद पड़ा और उसने अपनी तलवार खींच ली। पैदल सैनिकों पर घोड़े के ऊपर से वार करना नियम विरुद्ध बात थी।

पलभर में एक सैनिक घोड़े की लगाम खींच कर जुनार वाली सड़क पर सरपट भाग चला। सैनिक दो सौ गज ही आगे बढ़ा होगा कि उसने देखा—सड़क के किनारे ही वह परिचित घोड़ा खड़ा है किन्तु घुड़सवार का कहीं पता नहीं है।

सैनिक ने अपना घोड़ा रोका और वह भी घोड़े पर से उतर पड़ा परन्तु अपना घोड़ा साथ ही लिये हुए वह दाहिनी ओर खेतों में उतर गया।

मराठा सैनिक कुछ पग ही चला होगा कि उसने देखा—वही सैनिक आराम से भूमि पर बैठा है। उसने अपने पैर सामने की ओर फैला लिए हैं परन्तु इस समय उसके सर पर पगड़ी नहीं बँधी है। उसे उसने उतार कर पास ही भूमि पर रख छोड़ा है और उसके औरतों के से बाल कन्धों पर फैले हुये हैं। उसके निकट पहुँच कर सैनिक ने ललकारा:

"ऐ! खड़े हो जाओ।"

बैठे हुए बहादुर ने समझा कोई और आपत्ति आयी। वह तो इस विश्वास में, कि उसका साथी अभी ही जरूर लौटता होगा, यहाँ विश्राम कर रहा था किन्तु यह तो कोई और आ टपका।

किसी भाँति अपने को व्यवस्थित कर उसने भी अपनी तलवार तान ली।

आगन्तुक सैनिक ने तुरन्त कहा:

"सच-सच बोलो तुम कौन हो? तुम एक स्त्री जान पड़ती हो।

मैं ऐसे में शस्त्र नहीं चला सकता। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं तुम्हें छोड़ दूँगा। तुम्हें मेरे साथ चलना होगा।"

"मैं स्त्री हूं या पुरुष, तुम मुझसे लड़कर ही मुझे कहीं ले जा सकते हो।"

सुनते ही सैनिक ने अपनी तलवार भी सीधी की और तलवार का एक ऐसा हाथ दिखाया कि सामने वाले की तलवार दस गज दूर जा गिरी।

× × × ×

जब अपरिचित सैनिक को महाराष्ट्रीय सैनिक पूना की सरहद पर लाया तो वहाँ उसके अन्य साथी दूसरे घुड़सवार को भी बाँध चुके थे।

"ले चलो। इन दोनों को सरकार के सामने पेश करना है।...... उसने कुछ बताया? यह तो कुछ नही बताता है।......और आप लोग देख रहे हैं—यह औरत है......।"

"औरत," सभी के मुँह से एक साथ निकल गया।

तदनन्तर जब यह दल शाहजी के पूना स्थित राजमहल में पहुँचा तो पहरेदार ने इन्हें बाहर ही रोक लिया :

"बहुत रात हो गयी है। अब सुबह मिलना।"

"हम शत्रु सेना के दो भेदियों को लाये हैं।"

"यह झूठ है" उन नवागन्तुकों में से पुरुष ने कहा। स्त्री उसके निकट ख़ामोश खड़ी रही। सभी मराठे सिपाही उन दोनों को घेरे खड़े थे।

"तब तुम लोग कौन हो?"

"कोई भी हों, तुम्हारे सरकार के सामने ही बतायेंगे।"

"ठीक है यहाँ मत झगड़ो। महाराज जी के सोने का समय है," पहरे वाले सैनिक ने कहा।

"ठीक है। ठीक है। सब लोग चलिए। इनको शाह जी महाराज

के सामने सुबह पेश किया जायेगा। तब तक इनको मोलसरे जी की अतिथिशाला में ही रखना होगा।

× × × ×

पूना की उस चाँदनी रात में शाहजी अपने महल के शयन-कक्ष में किसी की प्रतीक्षा में पलंग के पास बारम्बार टहल-फिर रहे थे। टहलते हुए कभी वे अपने ख़ाली पलंग, कभी कमरे की शून्यता और कभी अपने आप को देख लेते थे। इस समय उनके हृदय में अत्यधिक उद्विग्नता थी। प्रतीक्षा के अतिरिक्त कुछ स्मृतियों ने उन्हें घेर रक्खा था। वे सोच रहे थे—'उनका भी जीवन क्या जीवन है ? हत्याओं में घिरे रहकर अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना और उस पर भी एक युग के बाद उस संघर्ष की न कही इति है न इच्छित फल की प्राप्ति। मेरे से सम्बन्धित जितने लोग है वे सब अनिश्चित, अव्यवस्थित दुःखी। जीजाबाई ! ध्यान आते ही शिवा नेत्रों में घूम गया। और शिवा, उनके हृदय का टुकड़ा जिसे उन्होंने इतनी दूर डाल रक्खा है ? अपने से दूर। और सम्भा ? वह तुकाबाई के पास·····।"—तब तुकाबाई का ध्यान कर तो वे अधिक विचलित हो उठे। उन्हें तत्काल ही बीजापुर पहुँचना था दो दिन व्यर्थ ही पूना में लगा दिए।

और इस सबके बाद भी यह आज की प्रतीक्षा। कैसी बिडम्बना है ? कैसी दुरावस्था ? फिर भी प्रतीक्षा ? क्यों ?'—इसका उत्तर शाह जी के पास था किन्तु वे स्वयं से पाना नहीं चाहते थे।

तभी किसी के आने की आहट सुनायी दी। शाहजी स्थिर होकर खड़े हो गये। आवाज़ आई और रुक गयी।

उन्होंने पुकारा :

"कौन है ?

पुनः नीरवता छा गयी।

शाहजी उस फैले हुए बड़े कमरे से बाहर चौक में आए। चौक में कई मशालों का प्रकाश फैला हुआ था। दूर एक छाया सी खड़ी दिखाई

दी । शाहजी सोचते रहे—वह वहाँ क्यों खड़ी है ? तभी उन्होंने पुकारा :

"कुलाबाई ?"

"जी नहीं महाराज ! मैं हूं मीराजी ।"

"मीराजी ? कौन मीराजी । तू यहाँ क्या करने आयी है ? कहाँ से आयी है ?"

"शिवनेर से आई हूं, महाराज !"

"ओ ! मीराजी, क्या है ? इधर आ ," शाहजी के निर्देश पर मीराजी हाथ जोड़कर समक्ष उपस्थित हो गयी ।

"शिवनेर से कब आयी ? इतनी रात गये, तुझे यहाँ किसने आने दिया ?" शाहजी ने साश्चर्य प्रश्न किया और धीरे-धीरे कमरे की ओर लौट गये । वे जल्दी ही मीराजी को वहाँ से हटाना चाहते थे । कमरे में स्वर्ण चौकी पर बैठते हुये वे बोले :

"हाँ जल्दी बता क्या बात है ? शिवा ठीक है ? और……।"

"सब ठीक है महाराज ! हनुमन्ते को सैनिकों ने बन्दी बना लिया है ।"

"हनुमन्ते को ? क्यों ?"

तभी मीराजी ने सब वृत्तान्त कह सुनाया ।

"तुम लोग भी इतने मूर्ख हो, यह मुझे पता नहीं था । जाओ भागो यहाँ से ।……बालाजी ! बालाजी !"

तत्काल सामने की ड्योढ़ी से एक हट्टा-कट्टा मराठा सैनिक दाहिने हाथ में भाला लिए हुए उपस्थित हुआ । उसने अपनी गर्दन झुका कर अभिवादन किया ।

"बाला जी । कोई बरगिरे इसके साथ करो जो हनुमन्ते को सैनिक शिविर से लिवा लावे । इन दोनों को यहीं कहीं ठहरा देना । सुबह बात होगी जाओ ।"

× × × ×

"हनुमन्ते ! तुम पूना कैसे आये ?"

"मुझे नहीं ज्ञात है, महाराज ! यह मीराजी बीजापुर जा रही थी। मैं इसकी सुरक्षा में हूं ।"

"मीराजी ! तुम बीजापुर कैसे जा रही थीं ?"

मीराजी एक क्षण खामोश रही। इस प्रश्न का वह उत्तर नहीं देना चाहती थी तभी शाहजी ने दुबारा प्रश्न किया :

"मीराजी ! तुम्हारे बीजापुर जाने का क्या कारण था ?" शाहजी की आकृति में शंका मिश्रित रोष उभर रहा था।

"जी महाराज ! बाईजी ने मुझे सेवा कार्य के लिये भेजा था।"

शाह जी मौन थे। मीराजी का बीजापुर जाने का कारण उनकी समझ में नहीं आ रहा था।

"वहाँ कब तक रहेगी।" शाहजी ने अपनी शंका की पुष्टि करना चाही।

मीराजी भी चतुर थी। उसने प्रश्न को समझा और तभी उत्तर दिया :

"मैं तो सदा वहीं रहूंगी या जहाँ नयी बाई जी रहेंगी।"

शाहजी मुस्कराये। परन्तु तत्काल ही गम्भीर हो गये। वे सोच गये जीजाबाई ने ईर्षावश ही मीराजी को बीजापुर भेजा है अथवा कुछ जानकारी प्राप्त करने के लिये। किन्तु इससे कुछ तर्क करना व्यर्थ है और उन्होंने तत्काल कहा :

"हनुमन्ते ! तुम शिवनेर छोड़ कर क्यों आये ? जाओ, तुरन्त लौट जाओ। मीराजी को हम स्वयं बीजापुर लेते जायेंगे।"

: ८ :

शिवा अब चार वर्ष का हो चुका था। वह दिन भर क़िले में इधर-उधर उछलता रहता था। प्रातःकाल ही वह माँ के समक्ष पलथी लगा कर बैठ जाता और अन्य लोगों के साथ ध्यानमग्न होकर रामायण पाठ को सुना करता। तदनन्तर माँ उसको भवानी के मन्दिर ले जातीं। जीजाबाई उसे मलमल की एक छोटी धोती पहनाती थीं और ऊपर से मलमल का ही घुटनों से नीचा लम्बा अंगा। तब वह नंगे पैरों ठुमुक-ठुमुक कर चलता और बड़ा सुहाना लगता था। जीजाबाई उसको देख-कर अपने अन्तस के समस्त क्लेश-शोक भूली रहतीं थीं। तब जीजाबाई दिन-दिन भर धर्म-ग्रन्थ पढ़ा करतीं। कभी भागवत उठा लेतीं तो कभी हस्तलिखित गीता का पाठ करती रहती।

शिवा चुपचाप खिसक जाता और समूचे क़िले की फेरी लगाते हुये बाहर फाटक पर जा पहुँचता। वहाँ सैनिकों को देखकर खामोश खड़ा हो जाता। बड़े स्नेह से मराठे उसे गोद में उठाकर चूमते, प्यार करते। वे सोचते कि वही उनका भावी अधिपति है। तब शिवा हाथ-पैर हिला कर किसी प्रकार उन सैनिकों की गोद से छुटकारा पाता। पुनः भूमि पर खड़े होकर वह उनकी तलवार की ओर संकेत करता।

"यह मुझे दो।"

कोई न कोई सैनिक उसके आगे तलवार कर देता। अब शिवा ठिगना और तलवार उससे एक हाथ ऊँची जो उससे सँभाले भी न सँभलती परन्तु बहुत प्रयत्न करके वह उसे लिये खड़ा रहता और भूमि की ओर देखता रहता। तब उसे यह ज्ञात नहीं था कि वास्तव में तलवार तो म्यान के अन्दर है। परन्तु एक दिन उसने दो सैनिकों को अपने सामने ही म्यान से तलवार खींच कर चलाते देख लिया। उसकी वह लपक, वह चमक, वह सफेदी उसे बहुत भायी परन्तु अब जब भी वह सैनिकों से तलवार लेता तभी खुली हुई। सैनिक मना करते कि उसकी धार तेज़ होती है; खून निकल आता है परन्तु बालक की ज़िद सो ज़िद। विवश, अनेक बार सैनिकों को तलवार खोल कर देनी पड़ती। वे डरते रहते और उसे हाथ से सँभाले रहते।

इस प्रकार शिवा का बालपन शिवनेर में बीत रहा था परन्तु अपने अतिरिक्त उसने अभी तक अपने सरीखे किसी दूसरे बालक को नहीं देखा था। वह एक सूनापन था, एक अभाव जिसे न समझते हुये भी बालक शिवा प्राकृतिक रूप में अनुभव तो करता ही था फिर भी सदैव खिला-खिला रहता था। यों उसका सब कुछ माँ पर केन्द्रित था। माँ ही उसका एक मात्र संसार थी। सैनिक ही उसकी वार्तालाप के पात्र थे।

हनुमन्ते और गोमा के तो हर समय साथ रहते-रहते वह ऊबा करता था और उन्हें ज्यों डपट कर भगाता रहता था। वे बेचारे कहीं आस-पास छिप जाते परन्तु चंचल बालक की निगरानी रखते।

एक दिन फाटक के दो पहरेदार बातचीत में इतने लीन हो गये कि उन्हें अपने आस-पास का ध्यान ही न रहा। बस, शिवा ने चुपचाप उनका एक भाला उठा लिया। उसको लेकर चलने में असमर्थ होने के कारण वह चलते ही धड़ाम से वहीं भूमि पर गिरा परन्तु तत्काल उठ खड़ा हुआ। भाला उसने फिर सँभाला और लगा पत्थर पर चोटें देने। जब खन्-खन् की कई आवाजें सुनाई दीं तो पहरेदार चौकन्ने हुये।

उन्होंने भाला शिवा के हाथ से ले लिया और गोद में लेकर जीजाबाई के पास पहुँचा आये, साथ ही भाले वाली घटना कह सुनायी। जीजाबाई ने सुना, मुस्कराईं और विचारमग्न होकर देर तक एक ही ओर देखती रहीं।

इसी कारण एक दिन गोमाजी जुनार उतर गया और वहाँ से एक छोटी तलवार बनवाकर ले आया। एक वैसी ही छोटी तलवार वह अपने लिये भी लाया। बस, शिवा के साथ तलवारों का खेल प्रारम्भ हो गया। उसमें ही गोमाजी उसे खेल-खेल में तलवार के हाथ चलाना सिखाता था।

बस अब क्या था ? एक दिन अपनी तलवार का भरपूर हाथ शिवा ने किले की एक बिल्ली पर जमा दिया। बेचारी एक से नहीं मरी। तब दूसरा जमाया। तीसरा जमाया और वह टें हो गयी। हनुमन्ते यह कृत्य देख कर दूर से भागा परन्तु जब तक उसका काम तमाम हो चुका था।

जीजाबाई से शिकायत की गयी इस पर उन्होंने दंड दिया कि तीन दिन तक शिवा को तलवार नहीं मिलेगी। तलवार उन्होंने अपने स्वाध्याय के कमरे में सामने ही टाँग ली।

पहला दिन आया। रामायण पाठ हो रहा था। सब लोग बैठे थे। शिवा भी यथावत् पलथी लगाये बैठा था परन्तु उसकी दृष्टि तलवार पर ही टिकी थी। उसका मन आज रामायण पर नहीं लग रहा था।

जीजाबाई कह रही थीं :

"समझे शिवा ! जब राम जी तुम्हारी तरह छोटे……।" और घूम कर जो उनकी दृष्टि शिवा पर टिकी तो उन्होंने देखा कि शिवा तलवार पर टकटकी लगाये बैठा है। रामायण की ओर उसका ध्यान नहीं है। मातृ सुलभ ममत्व उनमें जागृत हुआ और उन्होंने हनुमन्ते को पुकारा

"वह तलवार शिवा के पास लाकर रख दो।"

शिवा प्रसन्न। तलवार जाँघ के नीचे दबी थी।

जीजाबाई कहती रहीं :

"रामजी कभी बिल्लियों को नही मारते थे। पुस्तक में लिखा है—जो अपने को हानि न पहुँचावे उसे कभी नहीं मारना चाहिये। ... हनुमन्ते ! सुन रहे हो। शिवा को समझा देना।"

"हाँ माँ जी ! सुन रहे हैं। शिवाजी महाराज भी सुन रहे हैं।

इस प्रकार बीत रहा था शिवा का बाल-जीवन।

माँ उसकी जन्मदात्री थी, पालनकर्त्री थी, शिक्षिका थी, सहयोगिनी थी, मित्र थी—सब कुछ थी।

× × ×

जीजाबाई से छुट्टी पाकर शिवा तुरन्त भागता और क़िले के फाटक पर जा डटता। उसका समय सैनिकों से भाँति-भाँति के तर्क व प्रश्न करने में व्यतीत होता था।

"तलवार क्यों बनाई जाती हैं ? सबसे पहले तलवार किसने बनायी ? अच्छा, सबसे पहली तलवार किसने चलाई ? क़िला कैसे बनता है ? क़िला कौन बनाता है ? क़िला पहाड़ पर क्यों बनाया गया है ?..... अच्छा ! तुम लोग युद्ध कब दिखाओगे ?..... अच्छा ! मुझे छोटा घोड़ा कब ला दोगे ? घोड़ा तलवार क्यों नहीं चलाता है ? घोड़ा बोलता क्यों नहीं है ?"........इत्यादि

और गोमाजी या कभी हनुमन्ते के साथ पहरा देने वाले सैनिक उत्तर देते-देते थक जाते परन्तु उत्तर तो देना ही पड़ता।

इसी प्रकार एक दिन शिवा शिवनेर क़िले के फाटक पर खड़ा था कि एक भव्यात्मा उसके सामने आये। वे खड़ाऊँ पहने थे। लम्बा चोग़ा वे धारण किये हुए थे तथा उनके हाथ में त्रिशूल था। वे अपने माथे पर भी लाल त्रिपुण्ड का टीका लगाये हुये थे। उनका सर घुटा हुआ था। उनकी आकृति में तेज और वाणी में मिठास भरा हुआ था। उनके साथ दस-बारह व्यक्ति और थे।

क़िले के फाटक पर पहुँचते ही उनके साथ के दूसरे लोगों ने नारा लगाया :

"समर्थ बाबा रामदास की जय।"

शिवा ने अनायास ही हाथ जोड़ लिये। बाबाजी ने आगे बढ़कर बालक के सर पर हाथ फेरा।

"क्या यही शाहजी का छोटा पुत्र है ?" उन्होंने एक सैनिक को सम्बोधन कर प्रश्न किया।

"हाँ महाराज !" सैनिक ने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया।

बाबा ने शिवा के कन्धे पर हाथ रक्खा और पूछा :

"तुम्हारी माताजी कहाँ हैं ?"

"चलिये।"

× × × ×

समर्थ बाबा रामदास का क़िले में कई दिनों तक सत्संग रहा। समर्थ बाबा जीजाबाई के महल में ही टिके रहे। नित्य प्रातःकाल वे जीजाबाई व शिवा को रामायण सुनाते। क़िले के सैनिक व कर्मचारी भी रामायण-पाठ के समय एकत्र होते। क़िले का फाटक बन्द कर दिया जाता। दिन-दिन भर भजन व राम कीर्तन होता रहता।

प्रभु भक्ति में लीन जीजाबाई को देखकर समर्थ बाबा परम प्रसन्न हुये परन्तु उस परम पुनीता साक्षात् देवी स्वरूपा जीजाबाई के अन्तस की पीड़ा भी उनसे छिपी न रही। उन्होंने परोक्ष रूप में अनेक प्रकार से जीजाबाई को ढाढ़स बंधाया। वे बोले :

"निराकार ब्रह्म की उपासना ही मानव जीवन का वास्तविक आनन्द है। राम-भक्ति में लीन प्राणी को अन्ततः कुछ कामना नहीं रह जाती। उस अगाध प्रेम को पाने के अन्तर प्राणी सांसारिक माया-मोह से मुक्त हो जाता है। पिता-पुत्र, माता, पति-पत्नी के ये संसारी नाते एक अवधि की सीमाओं में बंधे हैं और मानव के इस भौतिक शरीर की

समाप्ति के साथ ही नष्ट हो जाते हैं परन्तु उस राम से जो नाता जोड़ लेता है वह जन्म-जन्मान्तरों तक कभी नहीं टूटता।

"संसार में ऐसा कौन है जिसे शोक-संताप कष्ट नहीं देता। धैर्य ही मानव की वह कसौटी है जो अन्त में उसे विजय और सन्तोष प्रदान करती है।

"परिवर्तन तो संसार और प्रकृति का नियम है। सांसारिक परिस्थितियाँ भी परिवर्तित होती रहती हैं। उस परिवर्तन के अनुसार ही व्यक्ति को अपने हृदय तक मस्तिष्क को मोड़ लेना चाहिये। वैसी स्थितियाँ तो स्वयं राजा राम, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, भगवान् राम के सामने भी उपस्थित हुयीं। उन्हें भी सहना पड़ा।

"जीजाबाई ! सब दु:ख क्लेशों को हृदय की अन्यतम गहराइयों से निकाल फेंको। कर्तव्य रूप में प्रभु-भक्ति और इस बालक शिवा के जीवन के निर्माण में लगी रहो। तुम्हारा कल्याण होगा।"

जीजाबाई ने नतमस्तक हो समर्थ बाबा के हाथ जोड़ दिये। एक क्षण को जैसे परब्रह्म परमात्मा के उन्हें विशद् दर्शन प्राप्त हुये और वे परमानन्द में लीन हो गयीं।

अगले दिन बाबा रामदास ने जीजाबाई से विदा माँगी। इस पर जीजाबाई ने प्रार्थना की कि आज से छठे दिन विजय-दशमी की पावन तिथि है अतः समर्थ बाबा विजय-दशमी के पश्चात् ही पदार्पण करें।

समर्थ बाबा ने जीजाबाई का अनुरोध स्वीकार कर लिया।

× × × ×

आज विजय-दशमी है। सर्वत्र राजा राम की विजय का स्मृति-दिवस हर्षोल्लास सहित मनाया जा रहा था। आज ही के दिन राम ने रावण पर विजय प्राप्त की थी। आज ही के दिन सत्य-असत्य पर विजयी हुआ था। आज ही रावण रूपी दुर्नीति दुराचरण, दुश्चरण, अनैतिकता, दम्भ, राक्षस वृत्ति का विनाश हुआ था। भारत भर में यह पुनीत पर्व बड़ी उमंग में मनाया जाता है। महाराष्ट्र में तो विजय-

दशमी प्रतिदिन रहती है। राम का गुणानुवाद तो हरेक हर समय करता रहता है। इस दिन घर-घर में रामायण का अखण्ड कीर्तन होता है। मेवा, मिष्ठान्न, खीर घर-घर बनती है। स्त्रियाँ अलग मग्न रहती हैं। इस त्योहार पर बालक पृथक ही किलकारियाँ मारते घूमते हैं।

शिवनेर के क़िले में भी विजय-दशमी का वह त्योहार विशेष आयोजनों सहित मनाया जा रहा था। समर्थ बाबा रामदास का दरबार लगा हुआ था। सामने कुछ हटकर जीजाबाई बैठी थीं। उनके निकट ही सज-धज कर शिवा बैठा था जो वड़ा प्यारा लग रहा था। गोमा जी, हनुमन्ते तथा क़िले के और सभी लोग घिरे बैठे थे। समर्थ बाबा के साथ आये हुये दूसरे लोग भी एक ओर बैठे थे। रामायण का अखण्ड पाठ चल रहा था। पाठ की वे मधुर ध्वनियाँ वातावरण को मुखरित कर रही थीं।

समर्थ बाबा की चौकी के सामने बड़े-बड़े थाल रक्खे थे जिनमें फल व मिठाइयाँ भरी थीं। इस सबकी व्यवस्था-जीजाबाई ने बड़े प्रयत्न से अपने कर्मचारियों को जुनार भेज-भेजकर की थी। समर्थ बाबा का चेहरा अन्तर्तेज से दीपित हो रहा था। वे प्रसन्न मुद्रा में दिखायी दे रहे थे ज्यों जीजाबाई के प्रबन्ध से बहुत प्रसन्न हों। अनेक बार उनकी दृष्टि शिवा पर भी टिक जाती थी जो माथे पर रोली का टीका लगाये रामायण पाठ को ध्यानस्थ हो सुन रहा था। समर्थ बाबा यह अनुभव कर रहे थे कि बालक बहुत होनहार है।

मध्याह्न में सभी ने एक साथ बैठकर भोजन किया। कुछ लोग रामायण पर बैठे थे। उनको छुट्टी देने के लिये दूसरे लोग जा पहुंचे।

इसी समय शिवा को पकड़कर लाया गया। समर्थ बाबा अब तक, भोजनोपरान्त, अपने स्थान पर विराज चुके थे। शिवा को जीजाबाई ने समर्थ बाबा के निकट बैठाया। तभी हनुमन्ते रोली, अक्षत्, पुष्प, फल, ताम्बूल, दूर्वा, मिष्ठान्न-आदि से सजा हुआ थाल सामने लाया। गोमा जी के हाथ में लकड़ी की एक छोटी सी खाली पाटी थी और बाँस की

: १४ :

"मैं कहता हूं तुम्हारा इस तरह से घूमना-फिरना ठीक नहीं है···।"

"परन्तु···।"

"परन्तु इतना है कि इसमें मान-प्रतिष्ठा घटती है। मैं जितना ही प्रजाजन के सामने तुम्हें ऊँचा उठाने की कोशिश में लगा रहता हूं उतना ही तुम जंगलों और पहाड़ों पर फिर-फिर कर सब बराबर कर देते हो। मैं पूछता हूं ऐसा काम क्या है जो तुम्हारा महल में मन ही नहीं लगता है। न राज-काज में मन लगे न माँ के पास बैठकर अब तुम भगवत्-पाठ ही करते हो। और तो और हरि-कीर्तन तक···।"

"नहीं दादा जी! मैं कहीं से आता हूं तो सीधा माँ के पास जाता हूं। उनसे आध घंटे धर्म-चर्चा कर लेता हूं तब किसी और काम में लगता हूं।"

"ठीक है इतने ही से सब कर्तव्य पूरे हो गये, क्यों? आज ही सुबह पानासम्बल कह रहा था कि आठ दिन से तुमने भाले के हाथ नहीं चलाये। क्या यह ठीक है?"

शिवाजी चुप सुनते रहे। वे कहीं और डूबे हुये थे। उन्होंने कहीं दूसरी जगह आने का वायदा कर रक्खा था किन्तु कोण जी थे कि छोड़ने का नाम ही नहीं ले रहे थे। शिवाजी जिस कार्य में संलग्न थे वह उन्हें

शिवाजी को कहीं अधिक महत्वपूर्ण दिखायी दे रहा था। फिर जो बात उन्हें करनी थी उसी की ही चर्चा तो दादा जी कोणदेव ने उस समय उठायी थी। ऐसी स्थिति में अब जाना तो असम्भव ही प्रतीत हो रहा था। शिवाजी ऊब रहे थे और दादा जी कहते चले जा रहे थे :

"शिवा ! तुम तो बारम्बार यह कहते हो कि मैंने न्याय-पंचायतें बना दी हैं तो अब हम लोगों को घर-घर डोलने की जरूरत ही नहीं है परन्तु आज जहाँ हम लोग चल रहे हैं वहाँ पहुँचने पर तुम्हें यह समझ में आ जायेगा कि पंचायतें बनाने के अलावा भी हम लोगों को स्वयं घूमना-फिरना आवश्यक है। फिर जन-सम्पर्क बढ़ाना भी तो कितना जरूरी है।"

"एक तरफ आप कहते हैं जन-सम्पर्क बढ़ाना जरूरी है दूसरी तरफ आप ही मुझे जन-संपर्क से रोकते हैं।"

"क्या कहना चाहते हो तुम ? क्या तुम्हारे लाभ की किसी बात पर मैं कोई आपत्ति भी कर सकता हूं ?"

"मैं यह नहीं कहता किन्तु जिन स्थानों में जाने के लिये आप मुझे रोकते है वहाँ जाने से क्या लाभ है यह मैं आपको अभी नहीं बताऊँगा, परन्तु जब•••।"

"ठीक है, वहाँ जाने से कितना ही बड़ा लाभ क्यों न हो किन्तु अभिभावक को यदि पहले यह ज्ञात नहीं होता है कि अमुक स्थान पर जाने से अथवा अमुक व्यक्ति से मिलने पर संरक्षित बालक का क्या लाभ-हानि है तब तक किसी भी निरीक्षक को संरक्षित पर पूर्ण अंकुश रखना चाहिये।"

"दादा जी ! वह मेरे लाभ की ही नहीं समस्त धर्म, जाति और देश के लाभ की बात है।"

"हो सकती है परन्तु वह तुम अपने अभिभावक से क्यों छिपाना चाहते हो ? यह क्यों सोचते हो कि तुम्हारे लाभ को मैं समझ सकने की

बुद्धि नहीं रखता ?" दादा जी ने अपने घोड़े को एक सड़क पर मोड़ते हुए कहा।

शिवाजी ने भी अपने घोड़े को दादाजी के साथ ही घुमा लिया। पल-पल में उनका मन दादाजी से तुड़ा कर भागने का हो रहा था किन्तु विवशता थी। किसी मुकद्दमे का फैसला करने जाना था। तभी दादा जी की बात का ध्यान कर शिवाजी ने उत्तर दिया :

'दादा जी ! यह बात नही है। यदि मैं यह कहूं कि कार्य पूरा होने पर ही उसको प्रकट करना चाहिये, तो।"

"ऐसी कौन सी मुग़ल सल्तनत फतह करने की योजना चल रही है जो दादा जी से भी छिपायी जा रही है।"

"दादाजी। माँ ने एक पत्र पिता जी के पास बंगलौर भेजा था उसका पिताजी ने कोई उत्तर नही दिया ।"

"शाहजी के पास उत्तर ही क्या था जो वे देते। हाँ, इतना है कि उन्होंने तुम्हारी माँ को और तुम्हें बंगलौर बुलाया है।"

"सच, दादा जी ! सच !" जैसे शिवाजी घोड़े पर से उछलते-उछलते बचे।

आज यों भी शिवाजी को अपने पिता की बेहद याद आ रही थी। वह चित्र कल्पना में ही था परन्तु अधिक उद्विग्न बना रहा था। वास्तव में अपनी अच्छी याद में शिवाजी ने अपने पिता को देखा ही नहीं था। एक धुंधला सा चित्र उन्होंने देखा था और वह भी आस-पास के लोगों से सुनकर। माँ तो उनका प्रसंग आते ही बेहद चुप्पी साध लेती थीं।

तो इसी समय अनायास दादाजी कोणदेव ने शिवाजी को फिर झकझोरा :

"क्यों शिवा ! बात टाल दी। पिता जी का प्रसंग छेड़कर वह बात दूर करना चाहते हो जिसे जानने के लिये मैं अधीर हूं।"

"दादाजी ! बस एक-दो दिन और ठहर जाइये मैं सब कुछ बता दूंगा।"

"तब एक-दो दिन मैं तुम्हें अपने सामने से हिलने भी नहीं दूँगा।"

दादा जी का आदेश सुनकर शिवाजी की तो धरती खिसक गयी। बहुत विनयपूर्वक में उन्होंने कहा :

"अच्छा आज चले जाने दीजिये फिर मैं आपको बताकर जाऊँगा।"

"न ! नहीं जा सकते।"

"दादा जी !"

"बता दो और चले जाओ।"

शिवाजी बड़े सोच में पड़ गये। वे कुछ बोले नहीं। किन्तु दादाजी में भी दया-माया का क्या काम ? वे तो अपने सिद्धान्तों और संकल्पों में बहुत दृढ़ थे। बालक सुस्त हो गया है इसकी उन्हें चिन्ता नहीं थी और वे जैसे उस बात को भुलाकर घोड़े पर आगे बढ़ते रहे।

× × ×

दादाजी कोणदेव तथा शिवाजी एक मकान के बाहरी बरामदे में बैठे थे। दादाजी एक पगड़ी, शरबती रंग का एक महीन अंगा और मराठा ढंग की धोती पहने हुये थे। शिवाजी मलमल का साफा बाँधे थे जिसके कोनों पर ज़री का काम हो रहा था। वह भी अंगा पहने हुये थे किन्तु उनके सफेद अंगे में कोनों पर तथा पीठ पर ज़री के काम की फूल-पत्तियाँ बनी हुयी थीं। वे भी मराठा धोती बाँधे हुये थे। किशोर शिवाजी पर वह पोशाक बहुत फबती थी। वैसे भी वे सुन्दर थे। लम्बे गोरे मुंह पर कटे आम सी बड़ी-बड़ी फाँकों सी आँखें, लम्बी ठोढ़ी को दाबकर मुस्कराते ओठ और ओठों से निकलने वाली मिठास भरी बातें बड़ी भली लगती थीं। वे सभी को पहली भेंट में ही मोह लेते थे। वह छोटा मराठा अपने बुजुर्ग दादाजी कुलकर्णी के साथ न्याय-आसन पर बैठ कर उस समय बड़ा भला लग रहा था: किन्तु उसके चेहरे से आतुरता की चिन्ता-रेखायें स्पष्ट झलक रही थीं।

शिवाजी को कहीं जाना था और इसी चिन्ता में उनका मन नहीं लग रहा था। परन्तु वहाँ एक मुकद्दमा पेश था।

दो भाई थे। उनकी एक बड़ी जमीन पूना से सात मील दूर दक्षिण की ओर थी। छोटा भाई कहता था कि जब जागीर का पाटिल जमीन की नाप-जोख करने आया तो बड़े भाई ने पाटिल को पच्चीस हून इसलिये देना चाहीं कि वह या तो ज़मीन नापे ही नहीं या नापे तो आधी या उससे भी कम बतावे जिससे उसको कर कम देना पड़े। पाटिल इस पर तैयार नहीं हुआ।

छोटे भाई का आगे कहना था कि उसने भी बड़े भाई से मना किया कि ऐसा न करें। ऐसी चोरी ठीक नहीं है। जो कर देना है वह भी अपने ही शिवाजी महाराज को देना है। लोग कर नहीं देंगे तो जागीर की तरक्की कैसे होगी।...इस पर बड़ा भाई बिगड़ गया और उसने छोटे भाई को केवल गालियाँ ही नहीं दीं बल्कि उसके दो लाठियाँ भी लगाईं।

पाटिल ने बड़े भाई से इसका विरोध किया इस पर पाटिल को भी उन्होंने पीटा।

बड़े भाई का कहना था कि यह सब मामला झूठा है। पाटिल छोटे भाई का साला लगता है इसलिये यह मामला उन दोनों ने मिल कर बनाया है।

वास्तव में दादा जी के सामने शिकायत भी पाटिल ने ही की थी।

इसके विरुद्ध बड़े भाई का यह कथन था कि उस पाटिल ने ज़मीनों की नाप कराने में इस तरह की बहुत सी चोरियाँ की हैं। यही बात उन्होंने पाटिल से कही थी, "हमारे पूना की उन्नति करने में आप लोग इस प्रकार बाधक क्यों हो रहे हैं। यदि आप लोग ईमानदारी से काम नहीं करेंगे तो शासन व्यवस्था कैसे चलेगी।"—इसलिये उस पर जल कर पाटिल ने अपने बहनोई को मिलाकर मेरे विरुद्ध यह झूठा अभियोग लगाया है।"

दादा जी ने दोनों पक्षों की बातें सुनीं। शिवाजी भी बैठे सुनते रहे। उस स्थान के दूसरे लोग भी वहाँ उपस्थित थे। साक्षियाँ लेने पर वे

केवल इतना कह पाये कि दोनों भाइयों में आपस में सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं परन्तु पाटिल की किसी ने कोई शिकायत नहीं की। बल्कि सबने उसकी प्रशंसा की कि उसने उन लोगों की ज़मीनों को बड़ी सचाई और परिश्रम से नपाया था।

प्रश्न था पाटिल चोरी करना चाहता था या बड़ा भाई।

पाटिल भी वहीं मौजूद था। यह भी ठीक था कि पाटिल छोटे भाई का साला था।

तभी बहुत विनम्र होकर शिवाजी ने दादा जी से कहा :

"पाटिल से भी पूछिये वह क्या कहता है ?"

दादाजी ने पाटिल को सामने बुलाया। पाटिल अपनी गर्दन झुका कर सामने खड़ा हो गया और उसने अपने कुछ कागज व दादाजी के हस्ताक्षरों से युक्त एक रसीद दिखायी। साथ ही वह बोला :

"अन्नदाता ! ये मंगाजी हैं और ये हैं इनके छोटे भाई मेरे बहनोई। मेरे बहनोई की ज़मीन अलग है। यह साठ एकड़ है लेकिन इन्होंने मुझसे ज़िद करके एक सौ बीस एकड़ भूमि लिखाई है।"

"क्यों ?" दादाजी ने अपना सर ऊपर उठा कर प्रश्न किया।

"ये कहते हैं कि ज़मीन का कर पूना की उन्नति के कामों में लगेगा। पूना नया होगा। पूना चमकेगा। इसलिये ये दूना कर देंगे। ये देखिये। ये है इनकी रसीद और महाराज। आप इनकी ज़मीन भी नपवा लीजिये यदि साठ एकड़ भी पूरी उतर जाये तो मुझे और मेरे बहनोई को कुछ भी सजा दीजिये," पाटिल बोला।

"लेकिन जैसे कम लिखना अपराध है वैसे ही ज्यादा लिखना भी जुर्म है। तुमने ऐसा क्यों किया ?" दादाजी ने पाटिल से प्रश्न किया।

पाटिल शिवाजी के पैरों पर गिर पड़ा :

"मेरे प्रभु ! पूना की जनता आप पर न्यौछावर है। आपके रूप में वह एक कर्णधार को देख रही है। मुक्ति-दायक को देख रही है। इन दादा जी को वह भीष्म पितामह के रूप में देखती है। पूना की जनता

आप पर बलि होने को प्रस्तुत है ।"

शिवाजी ने खड़े होकर पाटिल को उठाया। उस वृद्ध पाटिल के नेत्रों से आँसू बह रहे थे। वह भावोद्रेक में विह्वल हो रहा था।

उपस्थित जन पाटिल के प्रति विशेष सहानुभूति पूर्ण थे। मंगाजी के छोटे भाई ताना जी के दूना कर देने की इस भावना को देखकर भी सभी प्रभावित थे।

दोषी कौन था यह तो स्पष्ट ही था। बड़ा भाई मंगाजी बड़ी पैनी और क्रोधित दृष्टियों से उस सब कार्यवाही को देख-सुन रहा था।

तभी एक वृद्ध व्यक्ति ने आगे बढ़कर कहा :

"मंगा जी के इस कृत्य के मूल मे क्या कारण है इसे हमारे दादा जी कोणदेव जानते हैं।"

दादाजी कोणदेव नतमस्त बैठे थे।

शिवाजी ने एक बार दादाजी को देखा फिर धीमे से कान के पास मुँह लेजाकर पूछा :

"दादाजी ! क्या बात है ?"

"कुछ नही।"

शिवाजी समझ गये कि इस रहस्य को दादाजी रहस्य ही रखना चाहते हैं तभी शिवाजी ने तत्परतापूर्वक कहा :

"दादा जी ! मंगाजी से पूना की जागीर अब कर के रूप में एक पाई भी नहीं लेगी। जब ये कर देने का महत्व समझ लेंगे तो स्वयं कर देने के लिये हमारे पास आ जायेंगे। इनसे कर कभी माँगा न जाये।"

दादा जी यह न कह सके कि मंगाजी के रोष का कारण शाहजी हैं और वह कारण······पूना की नई पीढ़ी नहीं उसके कुछ पहले के लोग जानते हैं।

उसी समय शिवाजी ने अपना मत प्रकट किया :

"इस मामले में कोई भी व्यक्ति दोषी नहीं है।"

कहकर शिवाजी ने दादाजी कहा, "आइये ! चलें।"

शिवाजी समझ गये थे कि इस छोटी घटना के मूल में कोई बड़ा कारण छिपा हुआ है जो न तो उस समय दादाजी से पूछा जा सकता है न दादाजी इतनी भीड़ में कुछ बता ही सकते हैं। हाँ, इतना अवश्य था कि पूना के लोगों का अपने प्रति इतना प्रेम व विश्वास देखकर शिवाजी मन ही मन प्रभावित हो रहे थे। "उन्हें भी जनता के लिये कुछ करना है"—यह वे सोच रहे थे।

× × × ×

लौटते समय मार्ग में दादाजी ने कहा :

"शिवा ! देखते हो जन-सम्पर्क में कैसे-कैसे अनुभव होते हैं। लोग हम पर प्रेम के फूल चढ़ाते हैं या घृणा के ढेले मारते हैं यह हम कैसे जान सकेंगे ? केवल जन-सम्पर्क से। हमें सदा भले काम करना चाहिये परन्तु भले काम करते हुये भी लोग आलोचनायें तो करते ही हैं। भले ही आलोचनाओं की चिन्ता न की जावे परन्तु फिर भी लोग हमारे विषय में क्या सोचते हैं यह ज्ञान हमें रहना ही चाहिये। और कभी-कभी हमें अपनी आलोचनाओं पर भी कार्य-शैली निर्धारित करनी पड़ती है।"

"परन्तु दादाजी ! मंगाजी के विषय में आप क्या कुछ बतायेंगे ?"

"न।"

शिवाजी चुप हो गये। परन्तु उनसे न रहा गया और उन्होंने पुनः प्रश्न किया :

"क्यों ?"

"यह आवश्यक नहीं है कि हर बात जान ही ली जावे या हर बात जानने योग्य ही हो।"

शिवाजी खामोश हो गये।

× × × ×

लाल महल में पहुँचने के थोड़ी देर बाद ही दादाजी को लगा कि जीजाबाई शिवाजी को ढूंढ़ती हुयी उधर ही चली आ रही हैं।

शिवाजी महल से ग़ायब थे।

: १५ :

ऊँची पहाड़ी पर छिटके मकानों को देखकर ऐसा लगता था जैसे किसी ने काली चादर पर दूर-दूर मोम के सितारे टाँक दिये हों। जैसे काली अँधियारी रात में सफेदी की गुम्बदें अलग-अलग दिखायी दे रही हों ······और ये थे वे झोंपड़े—कच्चे-पक्के मकान, लकड़ी-पत्थर के बने, ग़रीबी में सने जिनमें मावल, एक जाति रहती थी जो मराठों के सिपह-सालार होते थे; जंग के रहनुमा होते थे और होते थे दुश्मन की मौत के डंके। इन्हीं से हेल-मेल बढ़ाने के लिये शिवाजी ने पूना से कतराना प्रारम्भ कर दिया था। माँ जीजाबाई की मीठी डपट खाना प्रारम्भ कर दिया था। अपने संरक्षक दादा जी की नाराजी सहन करना प्रारम्भ कर दी थी।

इन मावलों के मकान होते थे कहीं पहाड़ के टीलों पर तो कहीं पहाड़ की खोहों के बीच जो कहीं हरियाली और कहीं सूखे जंगलों से घिरे रहते थे।······और उस हरियाली या सूखे जंगलों की धरती पर रेंगा करते थे बड़े-बड़े अजगर, काले नाग, खूंख्वार शेर, भयानक चीते, चिलबिले बन्दर और चटखते रीछ। भालुओं के तो जैसे वहाँ जुलूस निकला करते थे। लंगूरों की बारातें तो दिन भर नाच-कूद मचाती रहती थीं।

शिवाजी की निगाह बचपन से ही बड़ी पैनी थी। आदमी को पहचानने की तीखी नज़र ने ही उन्हें बताया कि ये मावल ऐसे लोग हो सकते हैं जिनके दिलों को मोहब्बत और प्यार-मेल से यदि जीत लिया गया तो कभी वे उन्हें ही—शिवाजी को—देवता के समान पूजेंगे। परिस्थितियाँ और महत्वाकांक्षायें बता रही थीं कि उन्हें—शिवाजी को—ऐसे साथियों की ज़रूरत है जो एक आवाज़ पर कट-मर जायें। और मावलों को देखकर, उनकी बातें सुनकर, उनके तेवर समझ कर लगता था कि वे कट-मर सकते हैं। उनकी तनी गर्दनें, चौड़ी हड्डियाँ, हट्टे-कट्टे जिस्म और फड़कती बाहों को देखकर यह सहज ही समझ में आता था कि तलवार से अलग भी ये काम के आदमी हैं।

तभी शिवाजी ने अभी किसी से भी नहीं बताया कि उन्होंने अपने कुछ ऐसे साथी ढूंढ़ लिये हैं जो देश की आन-बान की बातें सुनकर जोश में लाल हो उठते है। जो इतने अशिक्षित हैं कि ज़िन्दगी के आराम और मौत की तकलीफ़ों के भेद को न जानते हैं न जानने की कभी कोशिश ही करते हैं लेकिन अपने देश के गौरव के प्रति सम्मान दिखाना तो जैसे उनकी आत्मा की पुकार है।

और शिवाजी जब उनके बीच जाते वे आप ही आप बड़े प्रसन्न होते जैसे उन्हें कोई रहनुमा मिला हो, देव-दूत, फरिश्ता। शिवाजी की माधुरी मूरत, मीठी बातें, खिलखिलाती मुस्कानें, सहानुभूति के सुख-सन्तोष को देख-सुन-समझ कर वे गद्-गद् हो जाते थे। वे सब चाहते थे कि शिवाजी सदा-सदा उनके बीच बने रहा करें।

× × ×

शिवाजी का घोड़ा पहाड़ी पगडंडी के एक मोड़ पर घूमा और दो क़दम आगे बढ़ कर उन्होंने ज़ोर से आवाज़ लगाई :

"पेशाजी ! पेशाजी।"

आवाज़ का कोई उत्तर नहीं आया यह ध्यान कर शिवाजी के चेहरे पर उदासी घिर गयी। तब तक गोमाजी का घोड़ा भी बराबर आ

लगा। गोमा जी शिवाजी के साथ ही चल रहा था किन्तु इस समय कुछ पीछे रह गया था। उसके निकट आने पर शिवाजी ने कहा :

"गोमा जी ! देखो यहाँ तो कोई दिखायी नहीं देता। लगता है, इन्तज़ार करके सब चले गये।"

उस पगडंडी के मोड़ पर ही वह मकान था जिसकी दीवारें चारों ओर से पत्थर की ईंटों की थीं और छतें बांस तथा खपरैल की बनी हुयी थीं। इसको देखने से ज्ञात होता था कि मकान के रौद्र रूप की भाँति ही उसमें रहने वाले भी भयंकर होंगे।

गोमा जी घोड़ा किनारे करके उतरा और मकान के निकट जाकर पुकारने लगा :

"पेशा जी ! कन्क जी ! पेशा जी !"

तभी अन्दर से एक वृद्धा महिला निकली जिसने अपनी प्रान्तीय भाषा में कुछ कहा। गोमा जी ने तत्काल लौट कर अपना घोड़ा संभाला और शिवाजी तथा गोमाजी आगे बढ़ गये। ये दोनों उस पहाड़ी पगडंडी पर ही अपने-अपने घोड़े उछालते हुये ऊपर की ओर चढ़ रहे थे तभी शिवाजी ने गोमाजी को सम्बोधित करके कहा :

"गोमा जी ! ये लोग रुके क्यों नहीं ?"

"कहाँ तक प्रतीक्षा करते ? हमको किस समय आना था और अब क्या समय हो चुका है ?"

"अब मैं क्या करूँ मैं तो कभी-कभी दादा जी से बहुत तंग हो उठता हूं। सब कुछ होने पर भी इन बूढ़ों से हम लोगों का समझौता हो ही नहीं पाता है। अपनी बात के आगे इन्हें दूसरे की बात को जैसे महत्व देना ही नहीं आता है।"

'ऐसे ही कभी आप मेरे लिये भी कहेंगे।"

"तुम बूढ़े कहाँ हो ?"

"आप से तो अधिक ही उम्र है मेरी।"

"लेकिन तुम मेरी बात को समझते तो हो।"

"दादा जी को भी समझा दीजिये।"

"हाँ !······लेकिन वे समझते तो नहीं। मालूम है कल क्या हुआ ?"

"क्या ?"

"सुनो ! यह तो जग विख्यात ही है कि रंग-महल के बाग़ पर उनकी कठोर पाबन्दी है।"

"हाँ।"

"कोई पत्ती न तोड़े, फूल न सूँघे, फलों को देखे नहीं······और तो और उनके भय से वे माली भी वैसे ही कठोर हो गये हैं "वे हरेक को डपट देते हैं", जैसे बहुत बिगड़ कर गोमा जी ने कहा।

शिवा जी खिलखिला कर हँस पड़े :

"लगता है, कभी तुम्हें भी उन मालियों ने झिड़का है।"

"आप हँसते हैं।·······ठीक है; और आप ही की छत्रच्छाया में हमारा, अपमान हो ?"

"छत्रच्छाया मेरी नहीं दादा जी की है। मैं तो स्वयं ही उनके बंधन में हूं; लेकिन कोई बात भी तो बताओ आख़िर हुआ क्या ?"

"होता क्या ? उस दिन मैं और हनुमन्ते टहलते हुये सिर्फ फव्वारे के किनारे की घास पर पैर रख ही पाये थे कि बस······।"

"माली लपका", शिवाजी ने बीच ही में टोक कर कहा और ठहाका मार कर हँस दिया।

"एक नहीं तीन-तीन। ऐसे जैसे चबा जाते। हनुमन्ते ने तलवार भी दिखलायी लेकिन वहाँ डरता कौन है। वह सब सिर्फ दादा जी के डर से काँपते हैं।"

"अनुशासन और व्यवस्था में इतना तो होना ही चाहिये", शिवाजी ने एक नीतिज्ञ की भाँति कह डाला।

"अनुशासन में भय ? कभी नहीं होना चाहिये। उसमें तो व्यवस्था

की सरलता और शान्ति होनी चाहिये ," गोमा जी ने ज्यों दादा जी के प्रति तिरस्कार के ओठ बिचकाते हुये कह डाला।

यों वार्तालाप चल रहा था। शिवाजी और गोमाजी पहाड़ी पगडंडी पर घोड़े बढ़ाते जा रहे थे कि सामने से कई घोड़ों की टापें सुनायीं दीं। दोनों पथिक कुछ ठिठके तभी सामने से जो घोड़े आते हुये दिखायी दिये उनके सवारों को देखकर शिवाजी जैसे प्रफुल्लित हो उठे। इन घुड़सवारों में सबसे आगे पेशाजी कन्क बढ़ता चला आ रहा था। पेशाजी कन्क एक मवाली नवजवान था जो शिवाजी का मित्र और उनका अनन्य भक्त था।

उस गोरे गठीले जवान ने शिवाजी को देखकर एक मुस्कान फेंकी और अपने दोनों हाथ जोड़ दिये। पहाड़ी रास्ता सँकरा था अतः साथी घुड़सवार क़तार बाँधे एक के पीछे एक खड़े के खड़े रह गये थे। उनके घोड़ों के पैर भी टेढ़े-मेढ़े पड़कर पत्थरों पर जैसे ठिठुक कर रह गये थे। रासें तनी की तनी रह गयी थीं और गर्दनें उचक कर शिवाजी को देख भर लेना चाहती थीं। इतना विलम्ब करके आने पर सभी शिवाजी से विक्षुब्ध थे परन्तु कुछ ऐसा था कि सभी को उधर सम्मोहन भी था। तभी सभी का प्रतिनिधित्व करते हुये कन्क बोला :

"इतनी देर ?"

"भाई ! मेरी मजबूरी······।"

"ठीक है ! और लोग रायरेश्वर में प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"चलो-चलो", कहते हुये शिवाजी ने अपना घोड़ा आगे बढ़ा दिया। सभी लोग घूमकर पथरीली पगडंडी पर चढ़ने लगे।

और

रायरेश्वर का वह भव्य शिवालय। त्रिलोचन की भावनाओं का वह क्रीड़ास्थल। अर्चनाओं की जुगुप्सा का वह आकर्षण। प्रेरणाओं का वह उद्‌बोधन। शिव-शक्ति का वह सिंह दर्शन :

इस समय शिवाजी मिले-जुले सब के साथ किन्तु सबका नेतृत्व

करते हुये आगे चल रहे थे। जैसे नेतृत्व उनका दैविक गुण था। जैसे जन-जन उनके साथ चलने की ही कामना रखता था। तभी ऊँचे से पहाड़ी फैलाव पर रायरेश्वर के मन्दिर की झलक देख कर शिवाजी उमंग में भर गये; अन्य साथी भी। तभी शिवाजी ने देखा—उनके कुछ अन्यान्य साथी रायरेश्वर शिवालय के बाहरी कोण पर खड़े ..... जैसे उन्हीं सबकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। दूर से ही शिवाजी ने अपनी तलवार वायु में उछाल दी। शिवालय के बाहर खड़े लोगों ने भी अपनी मुट्ठियाँ बांध कर हाथ ऊपर उछाल दिये और स्वर गूँजा :

'हर-हर महादेव।'
'हर-हर महादेव।'
'हर-हर महादेव।'

पल भर में यह समूह रायरेश्वर के मन्दिर में एकत्र हो गया। शिवाजी ने आगे बढ़कर दादाजी नरस प्रभु से हाथ मिलाया। तानाजी मलसेर से हाथ मिलाया। बाजी पसलकर, बाजीराव जेडे, कन्होजी तथा अन्यान्य सहयोगियों को गले से चिपटा लिया। विचित्र सा पारस्परिक प्रेम-व्यवहार प्रकाशित हो रहा था। सभी उमंगों में ओत-प्रोत थे। उस सम्मेलन के प्रति सभी जैसे उत्कंठित तथा हर्षित थे। तब एक-एक करके सभी शिव-मूर्ति के सम्मुख हो शान्तिपूर्वक बैठ गये ज्यों आवश्यक कर्म के लिये अधिक समय नष्ट करना उपयुक्त न लग रहा हो।

सभी मराठे नवजवान सफेद वेश-भूषा में थे (लम्बे मलमली अंगरखों के ऊपर कोई-कोई गाढ़े की मोटी बंडी चढ़ाये हुये था)। उनकी आकृतियों में जोश और मूछों पर तेवर कसाव ले रहा था। सभी ध्यानस्थ हो जैसे कुछ सोच रहे थे—जैसे कुछ सुनने को व्यवस्थित बैठे थे—कुछ समझने के विचार में थे और कुछ कर उठाने का इरादा लेकर ही वहाँ एकत्र हुये थे। एक वातावरण प्रस्तुत था, उनके चारों ओर जलन थी, चेतना थी, उद्घोष था, आवश्यकता थी और उस कटिबद्धता पर अपनी स्वीकारोक्ति प्रदान करने के हेतु रायरेश्वर के शिव भोले ने उन सबको बुलाया था

श्रौर कहना चाहता था :

"ठीक है । मेरे प्यारे सलोने नउजवानो ! देश श्रौर जाति के गौरव पर मेरी शक्ति का प्रयोग कर सकते हो ।जाश्रो । मेरा श्राशीर्वाद तुम्हारे साथ है । मैं श्रपने उपासकों की सदा सहायता करता हूं ।"

श्रौर तभी उस शान्त नीरवता में धीरे से उठकर शिवाजी ने प्रारम्भ किया :

"मेरे प्यारे साथियो !

चारों श्रोर श्रँधेरा छाया हुश्रा है । विदेशी शासन हमको श्राक्रांत किये हुये है । वह हमारी संस्कृति, सभ्यता, समाज श्रौर धर्म को नष्ट कर रहा है । वह हमारे शिवालयों को नष्ट करता है । संसार के सब धर्म भले और समान हैं । एक धर्मावलम्बी को दूसरे धर्मावलम्बी के पूजा स्थानों को नष्ट करने का क्या श्रधिकार है ? धार्मिक मान्यताश्रों को पीसने का क्या अधिकार है ? कुछ नहीं । केवल मात्र कारण है—विदेशी शासन होना विदेशी शासक को स्वभावतः हमारे धर्म, संस्कृति, सभ्यता, धार्मिक मान्यताश्रों से कोई दिलचस्पी नहीं होती । कोई मोह नहीं होता । वह शक्ति के जोम में समूचे संसार को अपनी तलवार पर उतारना चाहता है । धर्म-संस्कृति उसके सामने कोई वस्तु नहीं है । उसे तो साम्राज्य प्रसार में उन सब श्रनुचित कार्यों को करना है जो उसे प्रिय श्रौर दूसरों को अप्रिय लगें ।

"परन्तु हम भी क्यों सहन करें ? क्या हममें शक्ति नहीं ? धार्मिक चेतना नहीं ? श्रपनी मान-मर्यादा की रक्षा की सामर्थ्य नहीं ? श्रपनी माँ-बहिनों के सतीत्व की रक्षा की कटिबद्धता नहीं ? श्रपने उपासना गृहों को बचाने में प्राण होम कर देने की हुँकार नहीं ?

"है । है । है !"

"तब फिर क्या कारण है कि हम श्रपंगु बने हुये हैं ? हम में दोष थे । हममें ईर्षा-द्वेष था । हममें संगठन की कमी थी—जिसका लाभ हमारे

शत्रु को मिला। किन्तु अब हम क्यों आगे उन्हीं गलतियों को करते चले जायें ! दोहराते चले जायें ? क्यों विदेशी शासकों द्वारा दिये गये प्रलोभनों में फँसें ? कुछ धन-दौलत या ओहदा पाकर प्रसन्न हो लें ? क्यों, अपने ही देशवासियों के साथ विश्वासघात ? क्यों उनका गला काटें ?"

सर्वत्र सन्नाटा खिचा हुआ था। सभी उपस्थित जन बहुत ध्यान से शिवाजी की बातें सुन रहे थे। शिवाजी की मीठी वाणी सभी को प्रिय लग रही थी और प्रसंग ऐसा था कि जिस पर सभी आकर्षित थे। शिवाजी देर तक बोलते रहे :

"किसी की सम्पत्ति छिन जाती है। किसी की ज़मीन छिन जाती है। किसी का सम्मान सुरक्षित नहीं हैं। ऐसे अन्यायों के विरुद्ध तो अस्त्र उठाना हमारा पुनीत कर्तव्य होना चाहिये। पावन धर्म होना चाहिये। परमात्मा हमारी रक्षा करेगा।"

"हाँ ! परन्तु हमारे ही लोग हमारा गला काट रहे हैं। हमारा सत्यानाश कर रहे हैं। क्या आपके पिता शाहजी को अपने प्राचीन धर्म और संस्कृति की रक्षा नहीं करनी चाहिये थी ? क्या उन्हें ही अपने देश को अपने हाथों इस प्रकार विदेशियों को बेच देना था ? क्या निजाम शाही और बीजापुरी से मिल-मिलकर उन्हें अपने देशवासियों को इतना पद-दलित करना था ? अभी भी दक्षिण में वे क्या कर रहे हैं ? देवालय लूटे जा रहे हैं। नारियों का सतीत्व नष्ट हो रहा है। ज़मीन-जायदाद सब समाप्त हो रहा है। सर्वत्र विनाश छाया हुआ है।......छिः, छिः। आज भी शाहजी विदेशियों की सिज़दा कर रहे हैं," उपस्थित समुदाय में से एक ने उठकर तीखे स्वरों में कह डाला।

शिवाजी नत-मस्तक होकर यथास्थान बैठ गये। उन्हें जैसे हजारों बिच्छुओं ने एक साथ डंक मारा हो। जैसे उनका बढ़-बढ़कर बोलना सब तुषार की तरह घुल गया हो। जैसे उफान आकर शांत हो गया हो।

तभी नरस प्रभु ने खड़े होकर कहना प्रारम्भ किया :

"इसमें शिवाजी का क्या दोष है ? पुत्र अपने पिता के कृत्यों का उत्तरदायी नहीं भले ही समाज में पिता पुत्र के कृत्यों का उत्तरदायी ठहराया जाता है। कुछ बारीकी से देखिये। समझिये। शाहजी की अपनी परिस्थितियाँ रही होंगी, थीं और हैं। आप यह कैसे सोचते हैं कि उनमें अपने अथवा देश के प्रति सम्मान की भावना नहीं है ? वे कशमकश में पिसते रहे हैं। उसी आधार पर अपने देश की भलाई के लिये सोचते रहे हैं। सम्भव है कि वे सफल न हो पाये हों या उनके कार्य की शैली अधिक उपयुक्त न हो। देखना हमें आगे है। हमें करना है। हम अपने बुजुर्गों अथवा अतीत पर ही दोषारोपण करते रहें यह भी अनुचित है। हमें आगे की रूपरेखा बनानी है। अपनी परिस्थितियों को सँभालना है। आइये। अपने आराध्य के समक्ष—रायरेश्वर महादेव के सामने—क़सम खाइये......"

और पल भर में सभी उपस्थित-जन उठ खड़े हुये। आवाज गूँजती रही।

"क़सम खाइये कि अपने देश और धर्म के लिये जीवन होम कर देंगे। मातृभूमि की रक्षा करेंगे। विदेशी शासन को नष्ट कर देंगे। जूझ जायेंगे।"

और सबके मुख से एक साथ आवाजें आयीं :

"जूझ जायेंगे।"

दादाजी नरस प्रभु ने पुनः कहा :

"एक नेता मानेंगे। शिवा को हम सब अपना नेता समझेंगे।"

"शिवा को हम सब अपना नेता समझेंगे।"

सभी की शपथ ग्रहण हुयी। स्वर गूँज उठे :

"रायरेश्वर महादेव की जय।"

"हर-हर महादेव।"

: १६ :

युग-निर्माताओं में कुछ ऐसा होता है; उनकी वाणी इतनी ओज-पूर्ण, इतनी मधुर- उनके विचार इतने तेजस्वी, इतने आकर्षक; उनकी योजनायें ऐसी ठोस, इतनी निराली; उनके सिद्धांत ऐसे प्रखर, इतने अटल होते हैं कि जन-जन में पैठते, समाते चले जाते है ।

शिवाजी की वह बात लोगों के समझ में आने लगी—"सौभाग्य-दुर्भाग्य मन मानकर बैठ रहने का मज़ा भर है । हम अपनी धरती के आप मालिक हैं । हम अपने राष्ट्र के निर्माता हैं । नायक हैं । हम अपनी स्वतन्त्रता के बनाने वाले—उसके रक्षक हैं । हमें कोई मोड़ नहीं सकता। अन्याय के समक्ष हम दब नहीं सकते । अन्याय का हम मुँह नोच लेंगे । हम विदेशी-शासन का दर्प चूर कर देंगे । हम अपना राज्य स्थापित करेंगे । हम स्वराज्य की स्थापना के एक संस्थापक बनेंगे ।"

और चारों ओर एक हवा सी फैलने लगी । लोगों के मनोभाव परिवर्तित हुये । जन-जन में यह चेतना व्याप्त होने लगी कि हमने दासता की ज़ंजीरें अपने आप में व्यर्थ ही कस रक्खी हैं । हममें बुद्धि है, बल है, स्वदेश के प्रति अटूट स्नेह है और शिवा; उनका शिवा कह रहा है :

"हम नई उम्र के नवजवान ही दुश्मन के नाकों चने चवबा देंगे ।"

उससे कहो कि सेना कहाँ से आवेगी तो वह उत्तर देता है :

"हम अल्हड़ नवजवान ही स्वातन्त्र्य संग्राम की फौज के सिपाही होंगे।"

और धन-धान्य कहाँ से आवेगा ?

तो उत्तर देता है :

"हम शत्रुओं से अपने क़िले छीनेंगे। जागीरें छीनेंगे और अपने लिये धन-रसद का प्रबन्ध करेंगे। लड़ाई लम्बी है, न।

और वे देख रहे थे कि :

उनका नेता न्याय बाँट रहा है, सद्भावना प्रदान कर रहा है, त्रास का त्राता बना हुआ है। सांस तो मिलने लगी; वह जमीने भी दे रहा है। खेती-बारी का प्रबन्ध सुचारु रूप से चलने लगा है। कम से कम उसके क्षेत्र में किसी का अपमान नहीं हो रहा है। अब, किसी की ओर कोई आँख उठाकर नहीं देख सकता। कोई मनमानी नहीं कर रहा है। हरेक अफसर की अपनी अलग मिल्कियत नहीं है। शिवा अपनी माधुरी वाणी और ध्येय की उच्चता को लेकर बढ़ने लगा है।

दादा जी कोणदेव देख रहे थे :

जनता शिवा को अपना नेत्रत्व प्रदान करने लगी है। वह उससे प्रेम करती है। शिवा नीतिज्ञ हो रहा है। निपुण हो रहा है। वह अपने हाथ से शासन करने लगा है। कितना शुभ लक्षण है ?

और शिवाजी अपने स्वप्न की प्रतिमायें साकार होते देखना चाह रहे थे। संगठन; सौहार्द्र; प्रेम; मातृभूमि के लिये मर मिटने की साध; धर्म-जाति-देश के प्रति जन-जन का उमड़ता-उछलता हुआ प्रेम; अपने नेता पर आस्था-विश्वास; संकल्पों की दृढ़ता और स्वराज्य।

इसी वातावरण में स्थान-स्थान पर हरि-कीर्तन हो रहे थे। शक्ति के प्रतीक मारुति-परम बजरंगी हनुमान-की घर-घर पूजा हो रही थी। परम शक्ति प्रदाता शिव-शक्ति की हुंकार-हर-हर महादेव के रूप में-सर्वत्र गूँज रही थी। शिवाजी के वे नवजवान बछेड़े साथी हाथों में

करतालें तथा तलवारें लिये झुंड के झुंड एकत्र होकर शक्ति का प्रदर्शन एवं योजनाओं के सूत्र गठन कर रहे थे।

ऐसे ही में पूना में समर्थ रामदास स्वामी का शुभागमन हुआ। चारों ओर उत्साह की लहर दौड़ गयी। उनके स्वागत में जन-जन उछल पड़ा। स्त्रियाँ पाद-वन्दना के लिये उत्कंठा सहित समर्थ गुरु के दर्शनों के लिये गृह-त्याग करने लगीं और समर्थ बाबा ने रंग-महल के उस भव्य बगीचे में अपना पड़ाव डाल दिया।

हरि-चर्चा में समय व्यतीत होने लगा। हरि-नाम से समस्त वातावरण मुखरित होने लगा। ठट्ठ के ठट्ठ पूना वासी समर्थ गुरु में रम गये। समर्थ गुरु रामदास ने धर्म-चर्चा कर नर-नारियों को कल्याणकारी सदुपदेशों से ओत-प्रोत कर दिया और तब एक दिन प्रातःकालीन धर्म सभा की समाप्ति के उपरान्त उन्होंने अपनी ओजपूर्ण वाणी में कहा :

"शिवा ! कुछ आवश्यक वार्ता करनी है; दादाजी कहाँ हैं ?"

"विशेष कार्य से किरकी तक गये हुये हैं," विनम्रता पूर्वक समर्थ बाबा के सामने झुकते हुये शिवाजी ने उत्तर दिया।

"विशेष कार्य···कौन सा विशेष कार्य ?" रामदास स्वामी ने पलक मूँदकर अन्दर ही अन्दर दोनों पुतलियाँ घुमाते हुये प्रश्न किया।

"ढलाई खाना देखने गये हैं, महाराज !"

"किरकी में ढलाईखाना ? क्या पूना में जगह कम है ?"

"किरकी में एक लोहार विशेष प्रकार के भाले तैयार कर रहा है, महाराज !" शिवाजी ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया।

"ठीक है।···और तुम्हारे दूसरे साथी कहाँ है ?"

"सब इधर-उधर यहीं हैं, बाबाजी !"

"बुलाओ।"

और तत्काल ही बीस-तीस सशस्त्र युवकों का एक समूह समर्थ बाबा रामदास के चारों ओर घिरकर बैठ गया।

"धार्मिक चर्चा तो बहुत हो ली, अब कुछ राजनीतिक चर्चा भी

होनी चाहिये मलूसरे ! रायरेश्वर में तुम लोगों ने शिवा को क्यों नाराज़ कर दिया ?" समर्थ बाबा ने प्रारम्भ किया ।

"नहीं तो महाराज !"

"किसी ने कुछ भी कहा हो, इसे उसका खेद है ।"

"किन्तु···।"

"किन्तु यही कि शिवा ! तत्काल बंगलौर जाना होगा । तुम्हें ही जाना है । शाहजी से स्पष्ट बात करनी होगी । मराठों में आग लग चुकी है, बुझ नहीं सकती । युवको ! पहाड़ियों पर चारों ओर फैल जाओ । सेना की भर्ती शुरू कर दो । तुम्हारे पास असंख्य मराठे रण-बाँकुरे होने चाहियें···।"

"हम बराबर दौड़ रहे हैं, भगवन् !" मलूसरे ने तत्परता पूर्वक उत्तर दिया ।

"उन जंगली मवालियों को कुछ सिखाना भी होगा । वे आदमी नहीं जानवर काटना जानते हैं । लेकिन जानवर नहीं समझदार आदमियों को काटना है । युद्ध में चतुर सिपाहियों को चतुराई से सीधा करना होगा," समर्थ बाबा रामदास ने तीखी वाणी में कहा—"हमारी यह धर्म-चर्चा व्यर्थ है जब तक हम धर्म के नाश कर्ताओं का नाश न करें । विदेशियों से अपनी मातृभूमि का उद्धार किये बिना मारुति-पूजा झूठी है । मारुति की शक्ति का उपयोग करो तब मारुति प्रसन्न होंगे ।"

बाबा रामदास के कथन में अत्यधिक तीव्रता थी । युवकों में जोश भर रहा था । जैसे समर्थ बाबा कहते ही चले जाना चाहते थे :

"देश, धर्म तथा जाति के सम्मान के लिये शत्रु का संहार करना हरि-चर्चा के समान ही पुण्य का कार्य है । पद-दलित मातृभूमि अपने पुत्रों की आहुति माँग रही है । तैयार हो ?"

"हम सब तैयार हैं ।"

"केवल तुम्हारे सब के तैयार होने से क्या होगा ?"

"आप का आशीर्वाद एवं प्रेरणायें हमारे साथ हैं; हम औरों को तैयार करेंगे······।"

युवकों में से एक युवक कह ही रहा था कि सामने से जीजाबाई आती हुयी दिखायी दीं। वह सौम्य मूर्ति, धवल-वेश-धारिणी देवी बाग की हरियाली के बीच से लहराती हुयी समर्थ बाबा की ओर ही बढ़ती चली आ रही थी। जीजाबाई के साथ अन्यान्य कुछ स्त्रियाँ भी थीं। जीजाबाई के निकट पहुँच कर हाथ जोड़ते ही समर्थ बाबा ने कह डाला :

"जीजाबाई ! तुम्हारा शिवा शादी करने को मना करता है। यह कहता है मुझे पहले दक्षिण हो आने दिया जाये।"

शिवाजी मन ही मन सोच रहे थे—मैंने तो कुछ कहा नहीं, समर्थ बाबा अपनी तरफ से ही ऐसा कहना चाहते हैं किन्तु ठीक ही है; समर्थ बाबा ठीक ही सोचते है—इन विषम स्थितियों में विवाह कितनी बड़ी मूर्खता होगी।

"बाबा जी ! शिवा क्या जानता है ? उसके पिता को उसकी चिन्ता नहीं है। वे अपने आप में ही लीन हैं; तब क्या आप भी शिवा के संस्कार पूरे होने में सहायता नहीं करेंगे ? आपका मुझे बड़ा भरोसा है। यह कार्य अविलम्ब होना है। शिवा का विवाह होने के पश्चात् ही आगे कहीं कुछ होगा। मैंने दादा जी को आज ही लड़की के पिता को बुलाने भेजा है जिससे आपके सामने ही सब कुछ तय हो जाये," जीजाबाई ने नेत्रों में ममत्व के आँसू छलकाते हुये कहा।

समर्थ बाबा को मौन हो जाना पड़ा। सर्वत्र शान्ति छा गयी। उस स्थिति में थोड़ी देर तो शिवाजी बैठे रहे फिर अनायास उठे और चल दिये।

वह किशोर सामने जा रहा था। उसकी मस्तानी चाल में पुरुषत्व की आभा झलक रही थी। रूप का सुनहलापन जैसे दूर तक बिखरता चला जा रहा था। माता जीजाबाई, समर्थ बाबा तथा शिवाजी के

अन्यान्य साथी उधर ही देखते रहे जिधर शिवाजी चलते चले जा रहे थे। अन्त में समर्थ बाबा ने ही उस निस्तब्धता को भंग किया :

"छोकरा शादी के नाम से शरमा गया।"

"नहीं समर्थ बाबा ! शादियाँ तो वह दो करना चाहता है," हनुमन्ते बीच ही में बोल पड़ा।

"क्या ?"

"कुछ नहीं······, यह हनुमन्ते तो यों ही वकवास करता है," जीजाबाई ने बात टालने की चेष्टा की।

"जीजाबाई ! क्या तुम्हारे पुत्र के लक्षण भी अपने पिता के ही समान हैं ?"

"न, महाराज जी ! मैं जिस लड़की से इसका विवाह करना चाहती हूँ वह इसे पसन्द है फिर भी कहता है दूसरी लड़की से शादी करूँगा।"

"इसका क्या अर्थ ?"

"या कहता है दोनों से शादी कर दो।"

"बकवास ! तुम्हारा विचार किसको है ?"

"निम्बालकर······।"

"बस, बस। वही ठीक है, वही ठीक है।"

तत्क्षण ही शिवाजी पुनः लौट आये। उस समय उनके साथ एक अन्य मराठा सरदार था। शिवाजी व मराठा सरदार उस समूह के निकट आकर खड़े हो गये। नवागन्तुक ने सबको अभिवादन किया।

"पिताजी का दूत······।"

"ओह !" समर्थ बाबा विशेष रूप से उधर आकृष्ट हुये। अन्य सभी उपस्थित व्यक्ति उधर देखने लगे।

मराठा सरदार ने आगे बढ़कर एक पत्र जीजाबाई की ओर बढ़ा दिया। जीजाबाई ने पत्र पढ़ा और उसे दोनों हाथ से मोड़ते-मोड़ते एक ओर एकटक देखने लगीं।

"क्या है जीजाबाई !" समर्थ बाबा ने उत्सुकता में प्रश्न किया।

"हमें बंगलौर का न्यौता आया है......।"

"तब अवश्य जाओ, जाओ।"

अनायास ही जैसे जीजाबाई के तेवर बदल गये। वे बिगड़ उठीं :

"मैं बंगलौर जाऊँगी ? मैं बंगलौर कभी, कभी नहीं जाऊँगी। ऐसे स्थान पर और ऐसे व्यक्ति के निकट जहाँ हमारे धर्म की ऐसी हानि हुयी हो ? हमारी बहिनों की मर्यादा भंग हुयी हो। समर्थ बाबा ! अभी कर्नाटक में क्या कुछ नहीं हुआ ? मन्दिर नष्ट हुये। मूर्तियाँ तोड़ी गयीं। कितनी लूट हुयी ? और उन्हीं की छत्रच्छाया में ? कभी नहीं, कभी नहीं, कभी नहीं। मैं कदापि बंगलौर न जाऊँगी। मुझे अपने लड़के की शादी करनी है। मैं उसे पूरा करूँगी।"

सभी शान्त थे।

"शिवाजी के लिये तुम्हें बंगलौर जाना होगा जीजाबाई !" समर्थ गुरु रामदास ने बहुत धीमे से कहा।

उस समय वहाँ का वातावरण अधिक गम्भीर हो चुका था। रोष में ज्यों जीजाबाई की सांस फूल रही थी। शिवाजी शान्त भाव से एक ओर बैठ चुके थे। बंगलौर से आया मराठा सरदार अपनी गर्दन लटकाये चुपचाप खड़ा था।

"क्या शिवा की शादी में भी शाहजी को नहीं बुलाओगी ?" समर्थ बाबा ने पुनः प्रारम्भ किया।

"न ......। और फिर अवकाश ही किसे है जो वे आवेंगे। मेरा बुलाना ही क्या", कहते हुये जीजाबाई उठ खड़ी हुयीं।

"लीजिये दादा जी भी आ गये", सामने से दादाजी को आते देख कर शिवाजी ने कह दिया।

उस समय दादा जी के साथ एक दो मराठे नायक और थे। उन्हें देखकर जीजाबाई यथास्थान बैठ गयीं। अन्य नवजवान साथियों की

लेकर शिवाजी उठ आये और अब उस स्थान पर केवल समर्थ बाबा, दादा जी कोणदेव, जीजाबाई तथा दो नवागन्तुक रह गये।

बिना अधिक विचार-विमर्ष हुये शिवाजी के विवाह का कार्यक्रम निर्धारित हो गया और यह भी निश्चित हो गया कि विवाह के पश्चात् दादाजी, जीजाबाई एवं शिवा को लेकर बंगलौर जायेंगे।

उसी मध्याह्न, समर्थ बाबा ने पश्चिम की ओर प्रस्थान किया।

: १७ :

पहाड़ी पगडंडी की उखड़ी हरियाली सा तितर-बितर वह कारवाँ दक्षिण की ओर बढ़ता चला जा रहा था। आगे कुछ घुड़सवार लाइन में बढ़ रहे थे जिनकी संख्या चौदह थी। इन घुड़सवारों से कुछ दूर हटकर दो डोलियाँ चल रही थीं। एक डोली जो आगे चल रही थी उसमें बैठी सुभद्र महिला की ही भाँति उसकी चाल-गति सुस्थिर, गम्भीर एवं शान्त थी। डोली वाले भी जैसे सभी विचार मग्न होकर किसी गम्भीर विषय पर मनन करते हुये आगे बढ़ रहे थे। डोली में बैठी महिला के हृदय में—कुछ ऐसी उथल-पुथल, कुछ ऐसी चिन्तायें, भविष्य की कुछ अद्भुत सी कल्पनायें, अतीत के प्रति अनजाना—भरमाया सा क्षोभ; वर्तमान के लिये शंकायें—कुछ इस रूप में पैठी हुयी थीं कि अनायास जैसे विचारों की तन्द्रा तोड़ कर वह पूछ बैठी :

"रत्ना जी ! दूसरी डोली ?"—और कह कर उसने अपनी गर्दन मोड़ ली।

उत्तर आया :

"राजे जी ! वह चल तो रही है……।"

और महिला सोच गयी—"पीछे-पीछे ही तो साथ चल रही है और साथ चलने के उस दृश्य को देखकर तत्काल अनचाही मुस्कान

ओठों पर दौड़ गयी। दिखायी दिया :

डोली चल रही है। डोली के साथ एक उद्दण्ड सा युवक बराबर-बराबर चल रहा है जो डोली के घूँघट को उघाड़ कर अपने घोड़े पर से ही कुछ ऐसी शरारतें कर रहा है कि जिनके कारण डोली में कंपन भर रहा है। उस कंपन से जो डोलन डोली में उठ—उछल रहा है उससे डोली हिल-डुल रही है और डोली उठाने वालों के लिये कष्ट का कारण बन रही है फिर भी डोली वालों में उस सब क्रिया से एक उमंग, एक उत्साह; एक मनोरंजन उभर रहा है और वे कुछ मीठी सी गुन-गुनाहट सहित डोली को उठाये हुये बढ़ाते चले आ रहे हैं। साथी युवक म्यान में लगी तलवार से डोली के द्वार के झीने पर्दे को बारम्बार उठा कर या तो कुछ ऐसी मसखरी की बात कह देता है अथवा तलवार से ही डोली में बैठी नवोढ़ा को ऐसे गुदगुदा देता है कि उस अनखनेपन में भी वह कोमलांगी हर्ष का अनुभव कर ओठों ही ओठों में खिली जा रही है।

और आगे की डोली में बैठी महिला में मुस्कराहट भरा रोष उभर आया और उसकी वे निर्मल-निर्लिप्त आँखें ज्योतित होकर जैसे कह गयीं—"शैतान ! को हर जगह शरारत सूझती है।"

और शैतान ! सम्बोधन वह उस युवक के साथ जोड़ रही थी जो डोली के साथ चलते हुये शरारतें कर रहा था और उसका पुत्र था तथा अपनी नव-विवाहिता पत्नी के मान को प्रोत्साहित कर रहा था। परंतु यौवन की अल्हड़ता की उस खलबली में युवक को यह भान नहीं हो रहा था कि आगे डोली में उसके साथ माँ भी चल रही है।......कि सब मिलकर सत्तर-अस्सी घुड़सवार साथ हैं जो रक्षार्थ चल रहे हैं। ...... कि कुछ उसके अभिन्नतम मित्र हैं। .....कि उस समूचे कारवां का एक मुखिया भी साथ चल रहा है जो सबसे पीछे है और जो उस कारवां का ही नहीं उसका भी व्यक्तिगत मुखिया है।

वह जुलूस के मिलाव अथवा बिखराव का सा यात्रा-समूह बढ़ता

चला जा रहा था और डोली में बैठी नारी गड़ती चली जा रही थी कि ...... "इनको इतनी भी लाज नहीं कि...... कि चार साथियों के बीच में व्यवहार कैसा हो ?"

परन्तु माँ जानती थी; प्रसन्न भी थी; मन उमगा-उमगा, हुलसा-हुलसा हो रहा था कि पुत्र और पुत्र-वधू जीवन-सुख में विभोर हैं। एक जीवन भर आहुति दे लेने के अनन्तर; जीवन भर अनगिन दीप संजोकर बुझा लेने के पश्चात्; निराशाओं के पतझड़ की तीती हवाओं में जीवन की संध्यायें व्यतीत करने के उपरांत—ये कुछ ऐसे दिन आ गये थे कि जिनको वह पकड़कर बैठ जाना चाहती थी। वह इस क्षण चाह रही थी—पुत्र अपनी पत्नी से इठलाता रहे, इतराता रहे। वह चाहना सरल स्वाभाविक भी है और प्राकृतिक भी। तभी पीछे से दृष्टि घुमाकर महिला ने सामने को दृष्टि टिकायी और अनायास डोली वालों के मुखिया से पूछ बैठी :

'रत्ना जी ! अभी बहुत चलना है ?"

"राजे जी ! अभी तो बहुत चलना है। .....अभी तो ये सामने रत्नागिरी की पहाड़ियाँ दिखायी दे रही हैं।"

"क्या ये ही हैं रत्नागिरी की कन्दरायें रत्ना जी ?"

"जी हाँ"—कहकर जैसे डोली वालों के मुखिया ने महिला को मन ही मन श्रद्धा से नमस्कार कर लिया।

डोली बढ़ती गयी। महिला निरन्तर रत्नागिरी की ओर दृष्टि गड़ाये बैठी रही। अनायास ही उसे ध्यान आया—रत्नागिरि की पर्वतमालाओं के अन्तराल में छिपी—उन जिन प्रतिमाओं का—जिनके दर्शनों की लालसा उसके हृदय में चिरकाल से बनी हुयी थी परन्तु जीवन की जटिलता और इस क्षण भी कर्तव्य के निर्वाह ने उसे विवश किया कि वह उस दर्शन से वंचित रहे। तब वह सोचती रही—धर्म की बात, उपासना की बात। वह तो शिव की उपासिका है, मारुति की सेविका है फिर भी जो प्रतिमायें उसकी मान्यता में बनी हुयी हैं। परन्तु उसने अपने

को समझाकर सन्तोष किया कि एक वृत्ति के जीवों की आस्थायें कुछ भी हों मान्यतायें सब पर समान रहती हैं। धार्मिक प्रवृत्ति के लोगों में भी कुछ को छोड़कर जो निरीह कट्टरता में अपना दम घोटे रहते हैं—दूसरों के प्रति सम्मान और श्रद्धा बनी रहती है। परन्तु महिला निरन्तर सोचती चली जा रही थी—'किन्तु धर्म के नाम पर ही आज कितनी काट-मार, मानवता का कितना अनादर हो रहा है ?" महिला का मत था कि वह सब हो तो रहा है धर्म के नाम पर परन्तु वास्तव में उसका धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः है तो वह स्वार्थ और लिप्सा की जघन्य पूर्ति किन्तु उसका अस्त्र बना लिया गया है धर्म का नाम। विदेशी तभी कुकर्म करते हुए धर्म की दुहाई देते रहते हैं। यह ऐसा नाम है जिसपर साधारण जनता परवशता स्वीकार कर लेती है। आज यही परिस्थिति है। इसी पर ईरान, ईराक और अफ़गानिस्तान की गरीब जनता आज लुटेरा बनाकर हमारे देश में लाई गयी है।......और ध्यान करते-करते जैसे महिला के हृदय में आवेश-आवेग और उससे अधिक रोष भर गया। उसका रोष था उसके प्रति जिससे मिलने के लिये वह इतना बड़ा कारवां लेकर चल दी थी—अपने पति के प्रति। उसका पति जो इन दिनों सुदूर दक्षिण में उस धर्मान्धता का साथ दे रहा था जो धर्म के नाम पर ही धर्म—किन्तु दूसरे के धर्म की आत्मा को घोट रहा था। और वह ऐसा क्यों कर रहा था ? वास्तव में वह स्वयं आत्मा से ऐसा नहीं कर रहा था परन्तु एक कर्तव्य के निर्वाह में वह अनजान ही उसमें ऊँचे कर्तव्य को चोट दे रहा था। इसकी झुँझलाहट इस महिला में अत्यधिक थी। कुछ ऐसा था कि अपने व्यक्ति पर हुये पति के अन्यायों को तो महिला ने सदा ही सहन किया था किन्तु अपनी समाज और धार्मिक संस्कारों पर उसके द्वारा, परोक्षरूप में ही सही, होने वाले उस सहयोग के लिए वह अत्यधिक दुःखी थी। और इस प्रकार के राजनीतिक दुःखों को भी वह अपने बहू-बेटे की खुशियों में घोल लेती थी। तब वे दुःख दुःख ही रहते थे। महान् क्लेश की आवृत्ति उघड़ कर बह जाती

थी या उड़ जाती थी और वह नारी रूप सत्य-सौम्य प्रतिमा के रूप में शांत भाव अपनाये रहता था। उसी रूप में वह उस समय भी मगन थी और उसका पुत्र जीवन की नवीनता को उमंगों में भर कर अपनी पत्नी पर उड़ेल रहा था।

पुत्र भी अपने जीवन की राजनीतिक तेजस्विता को दिन के कुछ अंशों में उस समय उस प्रकार भुलाकर यात्रा का सुख-आनन्द ले रहा था।

× × × ×

"क्यों जी अन्तू जेदे! पूना के क्या हाल हैं?"

"बहुत बुरे हाल हैं महाराज!"

"क्या बकते हो?"

"बकता नहीं मैं ठीक कहता हूँ।"

"हर समय ऊट-पटांग बात अच्छी नहीं होती हैं। क्या कहना चाहते हो? तुमने पूना में ऐसा क्या देखा है जो ऐसी बकवास करने पर उतारू हो?" शाहजी ने पूना से लौटकर आये हुये अपने गुप्तचर से डपट कर कहा।

"सुनिये महाराज! पूना में आपके विरुद्ध एक भारी वातावरण तैयार है। स्वयं जीजाबाई आपसे बेहद बिगड़ी हुई हैं।......शिवा ने तो जैसे वहाँ पर एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना ही कर ली है। यों पूना की बहुत तरक्की है। पूना कुछ का कुछ हो गया है। पूना अब वह पूना नहीं। वह अब अच्छा नगर दिखायी देता है। दादाजी ने आपके पुत्र के लिए बहुत सुन्दर महल बनवा दिया है। अब शिवा वहाँ राज्य करता है। कोष इकट्ठा कर रहा है। दादाजी परेशान रहते हैं। उनका कहना भी नहीं माना जा रहा है। मनमानी हो रही है। महल से दो-दो दिन गायब रहा जाता है। मवाली युवकों का एक बड़ा जत्था तैयार किया गया है जिसका शिवा मुखिया है। बस घोड़ों पर चढ़कर यह दल न जाने कितनी दूर-दूर का चक्कर काटता है।

"इन दिनों पूना के इधर-उधर डाकेजनी बढ़ गयी है। पूना के लोगों का कहना है ये डाके शिवा के साथ के वे नवजवान मवाली ही डालते हैं।......भला बताइये कितनी लज्जा की बात है—शिवा का नाम डाकों में घसीटा जाता है।

"लोगों का कहना है इन नवजवानों ने बड़ा भारी कोष इकट्ठा किया है और उससे आगे कुछ होने वाला है। शायद कुछ जागीरें छीनने झपटने का काम हो। ......दादाजी झींक रहे थे—शिवा उनकी बिलकुल नहीं सुनता है...... ।"

"और क्या कहना चाहते हो ? शाहजी ने अत्यधिक आवेश में कहा।

"यही क्या कम है, महाराज ?"

"क्या शिवा ने तुम्हारा कोई अपमान किया है ?"

"नहीं महाराज !"

"क्या शिवा ने तुम्हारा कुछ आतिथ्य नहीं किया ?"

"महाराज ! तब क्या आप सोचते हैं कि झूठ बोल रहा हूँ ?"

"हाँ झूठ, झूठ, झूठ।"

"मैं सच कह रहा हूँ, महाराज ! पुत्र की जागीर अब आपकी भी नहीं है। वह अब केवल शिवा की है।"

"क्या बकता है जेदे। मुझसे मेरे शिवा का विद्रोह सिद्ध करना चाहता है," कहते-कहते शाहजी ने अपनी तलवार जेडे पर तान ली।

"कुछ भी कहिये मैं सच ही कहूँगा"—उसी दृढ़ता में जेडे ने कहा।

शाहजी कुछ ढीले पड़े साथ ही विचारों में डूब गये। उनकी तेजी जेडे की तेजी के सामने ढीली पड़ गयी। शाह जी अपने सिंहासन से उठकर इधर-उधर टहलने लगे। उस समय शाहजी के उस मिलन कक्ष में शाहजी एवं जेडे के अतिरिक्त कोई नहीं था। शाहजी को इस प्रकार की कुछ सूचनायें पहले भी एक दो लोगों ने दी थीं और अब जेडे से उनकी

पुष्टि होते देख कर उन्हें शिवाजी पर बेहद क्रोध चढ़ रहा था जिसे वे उस रूप में बिगड़ कर जेडे पर निकालना चाहते थे साथ ही अपनी शंका को संतृप्त करना चाहते थे। उसी प्रकार टहलते-टहलते शाहजी के मस्तिष्क में एक विचार आया और वे अनायास चीख़ उठे—"जेडे !"

"जी महाराज !"

"शिवा को फौरन बंगलौर लाने का प्रबन्ध किया जाये।

"जैसी आज्ञा महाराज। किन्तु शिवा बंगलौर नहीं आयेगा।"

"क्या मतलब ?"

"यही कि मैंने पूना में स्वयं यह प्रस्ताव किया था जिसको बहुत उपेक्षा सहित उसने तिरस्कृत कर दिया था ?"

"क्या कह कर ?"

"हिन्दुओं पर अत्याचार करने वाले हिन्दू को मैं कभी क्षमा नहीं कर सकता; भले ही वह मेरे पिता हों........"

"हूं.......," कहकर शाहजी गम्भीर हो गये वे सोचते रहे—जेडे की उत्तर देने की ऐसी तत्परता यह सिद्ध करती है कि उसके कथन में बहुत अंशों तक सचाई है। साथ ही लगता है जीजाबाई ने पुत्र का मस्तिष्क विकृत किया है। जब-जब उसे बंगलौर बुलाया गया तभी उसने मना कर दिया। केवल मना ही नहीं किया वरन् प्रस्ताव का बुरी तरह से तिरस्कार कर दिया। यदि ऐसा है तो मैं स्वयं पूना जाऊँगा। मैं शिवा को बिगड़ने नहीं दूँगा। मुझसे विद्रोह की तो बात ही क्या है ? परन्तु हाँ ! इस प्रकार की चाल-ढाल आगे चलकर अहितकर सिद्ध हो सकती है। उससे आदिलशाही नाराज़ हो सकती है। पूना का नुकसान हो सकता है। शिवा का नुकसान हो सकता है। तब दाँत किटकिटा कर शाहजी अपने आपसे ही बिगड़ते रहे—यह कोणदेव वहाँ क्या कर रहा है ?"

. और सचमुच शाहजी आदिलशाही को नाराज़ होते नहीं देख-सुन सकते थे। यही उनकी एक भारी कमज़ोरी थी।

उसी समय शाहजी ने पूना जाने की घोषणा की :

"जेडे ! मैं इसी समय पूना जाऊँगा ।"

तत्क्षण ही द्वारपाल ने आकर सूचना दी :

"महारानी जीजाबाई, कुंवर शिवाजी, और बहूरानी पधारे हैं……।"

शाहजी के चेहरे पर अनायास ही मुस्कान खिंच आई। एक पैनी नज़र उन्होंने जेडे पर फेंकी और बोले :

"हट जाओ मेरे सामने से ।"

: १८ :

शाहजी आज बहुत मगन थे। आज बहू को लेकर बेटा मिलने आया था। न जाने कितनी विवशतायें थी, न जाने कितने रूप में कर्तव्यों के निर्वाह करने थे, न जाने कितने उत्साह-उमंगों को दाब-दाब कर रुकना पड़ा था—और तब शिवा के विवाह में शाहजी नहीं जा पाये थे। उनके शिवा का विवाह, लड़के का विवाह, और वे न जा पायें; शाहजी न जा पाये; पिता न जा पाये —कितनी बड़ी बात थी। .....और आज शाहजी अपने महल भर में फूले नहीं समा रहे थे। बहू को कहाँ उठावें, कहाँ रक्खें ? पुत्र को एक बार जी भर कर देखा और मन भर गया। पत्नी भी दिखायी दी। उस ओर नाप-तोल के आकर्षण के बीच शाहजी की नजर घूमी और घूम-फिरकर बहू पर ही टिकती रहती थी। उन्हें बड़ा सन्तोष था कि उनकी इच्छा की अवहेलना नहीं की गयी। शिवा पत्नी को लेकर बंगलौर आया।

बहुत बार व्यस्तता से भाग कर मन कुटुम्ब में रम जाना चाहता है। शाहजी भी अपने वातावरण, अपने झंझटों, अपनी विवशताओं से ऊब चुके थे। जीवन के साथ राजनीति के उतार-चढ़ाव से तंग आ चुके थे। राजनीति, कूटनीति और समाजनीति के ज्वार-भाटों की जो टक्करें व्यक्ति पर लगती चली आई थी उससे अब उलझन बढ़ती जा रही थी।

ऊपर से पत्नी जीजाबाई ने आकर बेहद लानत-मलामत की :

"तुम्हें लाज नहीं आती कि अपने देश-जाति और धर्म के शत्रुओं से गठ-बन्धन करके अपनी ही निरीह जनता पर अत्याचार के पहाड़ ढकेल रहे हो। ऐसी गुलामी से तो आत्मघात करलो जिसमें अपने देवस्थान अपने हाथों नष्ट करने पड़ें। अपनी मां-बहिनों की लाज सामने-सामने लुटे। अपनी जाति-धर्म और समाज की मर्यादा का यों विनाश हो।

"ऐसी कौन सी जाति धर्म या देश है जिसे अपने सम्मान और गौरव की रक्षा करने का ध्यान न हो। मोह न हो। वह उसके लिये जूझ नहीं जाती। उसकी रक्षा के लिये अपने को मिटा नहीं देती और कौन व्यक्ति होगा जिसे आत्म-गौरव का भान न हो।

"पता नहीं क्या सोचते हो ? कौन सी राजनीति लड़ाते हो कि गुड्डों की तरह टुकुर-टुकुर देखते हो और सम्मान अथवा अपमान क्या होता है यह जानते ही नहीं; यह जानना चाहते ही नहीं। राम-राम ! ऐसी गुलामी ! नाश हो जाये ऐसी गुलामी का।"

शाहजी विचारों में तल्लीन पत्नी की ताड़ना को सुनते रहे। सोचते रहे। कहीं उनकी कार्यशैली में दोष है या लोग उन्हें समझ नहीं पा रहे हैं। परन्तु जब सभी नहीं समझ पा रहे हैं तो यह प्रणाली स्वतः में एक बड़ा दोष है। तभी दूसरी ओर से पुत्र ने अलग कसा :

"बापूजी ! हम सत्याग्रह कर देंगे। हम अनशन करेंगे। आपको आदिलशाही की ग़ुलामी का परित्याग करना होगा। आपको दक्षिण छोड़ना होगा। बंगलौर छोड़ना होगा। आज की इस सम्पूर्ण परिस्थिति को बदलना होगा।

"आख़िर देश की दशा संभालनी है। हमें भी समाज के बीच जिन्दा रहना है। हम क्या मुँह दिखाकर लोगों के सामने चलें—उठें। आपकी यह ग़ुलामी हमारे भविष्य का नाश करने पर तुल गयी है।"

और शाहजी गर्दन लटका कर बैठे रहे। बस एक ही उत्तर था :

"मैं बहुत जल्दी आदिलशाही की नौकरी छोड़ दूँगा।"

परन्तु

"बीजापुर से परवाना आया है। सुल्तान तुम्हें देखना चाहता है। प्यार करना चाहता है। तुम्हें वहाँ चलना है।"

"मेरा बेटा कदापि बीजापुर नहीं जायेगा"—जीजाबाई ने अत्यधिक आवेश में घोषित किया।

"बापू जी! मैं आपके हाथ जोड़ता हूं। आपके पैर छूता हूं—अब आप पराधीनता के इस सुख-आनन्द को भूल जाइये। आपने बहुत दिन निजामशाही और आदिलशाही की गुलामी कर ली अब अपनी सन्तानों से वैसा मत कराइये।"

शाहजी ने शान्ति पूर्वक सब सुना। दिन भर अन्यमनस्क बने रहे। कहीं जी नहीं लगा। सोचते रहे, सोचते रहे—क्या होना चाहिये? परन्तु वह बात मन से लगी थी—शिवा को लेकर एक बार बीजापुर दरबार के दर्शन कर आऊँ। बस—बीजापुर से लौट कर सब ठीक कर लूँगा। सब को तसल्ली दे दूंगा।

और

यह पारिवारिक मतभेद थोड़े समय चला।

परन्तु एक दिन प्रभात काल में जो शिवाजी ने देखा तो सामने की इमारतों पर हरे रंग के चौकोर झंडे फहरा रहे थे जिन पर अर्ध-चन्द्र के चिह्न बने हुये थे। उस टेढ़े चाँद से छाये भवनों को पार करते हुये जैसे शिवाजी आत्मपीड़ा में पिसते चले जा रहे थे। शाह जी गर्दन उठाये बड़े उत्साह में कभी शिवाजी की भाव-भंगिमा और कभी बीजा-पुर की स्मृतियों को देख कर मन ही मन क्षण में मुरझाये और क्षण में खिले दिखायी दे रहे थे।

"शिवा! बीजापुर के सुल्तान की सीधी रिश्तेदारियां कुस्तुन्तुनियाँ के खलीफाओं से हैं इसलिये ये बड़े ऊँचे मुसलमान माने जाते हैं। टेढ़ा चांद उन खलीफाओं का ही धार्मिक चिन्ह है"—शाहजी ने जैसे बहुत गर्व पूर्वक कहा।

"जी……"विवशता में शिवाजी को कहना पड़ा और शाहजी एवं शिवाजी के घोड़े क़दम-क़दम मिलाकर आगे बढ़ते चले गये। इस समय पिता-पुत्र बीजापुर की सड़कों पर चल रहे थे। शाहजी शिवाजी को बीजापुर लाना ही चाहते थे और ले लाये। शिवाजी भी बड़े उदास भाव से—'नई जगह देखने को मिलेगी'—इतना संकल्प करके पिता के साथ चल दिये। अस्तु,

बीजापुर में कई सड़कें पार करके अन्त में पिता-पुत्र उत्तरी दरवाजे पर पहुंचे। वहाँ खुदा हुआ था :

"यह वह फसील है जिसे सुल्तान ने बनवाया। जो सिकन्दर की शान के बराबर है और जिस सुल्तान का रुतबा सातों समुन्दरों में फैला हुआ है।"

शिवाजी ने वह पढ़ा। घृणा मिश्रित रोष में वे भर गये और जैसे किसी दुर्गन्धि से नाक हटा ली जाये उस प्रकार उन अंकित शब्दों से अपनी दृष्टि घुमाकर उन्होंने देखा चहारदीवारी की भारी-भारी दीवालें और गुम्बदें जो दूर तक फैली हुयी थीं।

शाह जी अन्दर ही अन्दर प्रसन्न थे। बीजापुर से उनका बहुत गहरा लगाव था। उसे वे किसी अंश में अपना ही प्रभुत्व मानते थे। वह वास्तविकता थी अथवा मिथ्या अहंकार इसको भी वे भली भाँति जानते थे परन्तु स्वभाव में वह बात रम गयी थी कि सुल्तान की इज्जत को अपनी इज्जत मानो। इसी चाव में शाहजी बीजापुर की छोटी से छोटी वस्तु से लेकर बड़ी से बड़ी वस्तु को शिवाजी को दिखाना चाहते थे। उसमें जैसे उन्हें आनन्द प्राप्त हो रहा था। और तभी उन्होंने अपने हाथ के संकेत से दिखाया उन तोपों को जो फसील के किनारे दूर-दूर रक्खी थीं और जिनकी रक्षा के लिये ऊपर से छाते तने हुये थे।

"शिवा ! वह देखो वह हैं 'मलिके मैदान'। यह तोप यहाँ की मुख्य व प्रसिद्ध तोप है। इसको मशहूर कारीगर खान-मुराद ने बनाया था।

इसके मुहाने पर खुदा होगा—"ऐ अल्लाह के बन्दे ! क्या तेने मुझे चला कर देखा है ?"—और दूसरी ओर इससे भी मजेदार बात खुदी होगी– "मैंने इस शाह को जीता है।"—देखो ! देख रहे हो—इसका मुँह इतना चौड़ा है कि इसमें एक आदमी सीधा बैठ सकता है और इसकी शक्ल एक राक्षस की सी है जिसके जबड़े व पंजे खुले दिखाई देते हों। इस तोप को उढ़ाने के कपड़े सोने-चाँदी से मढ़े हुये हैं। कभी तो सुल्तान इसकी शान बढ़ाने के लिये इसके पास तक भारी जुलूस के साथ आता था। बीजापुर के फौजी अब भी इन तोपों के सामने सलामी देते हुये आगे बढ़ते हैं।……आओ देखो"—कहते हुये शाहजी ने अपना घोड़ा 'मलिके-मैदान' की ओर बढ़ाया।

"ठीक है—यहीं से दिखायी दे रहा है," जैसे बहुत उपेक्षा सहित शिवाजी ने कहा। उन्हें वैसी किसी बात में जैसे कोई रुचि ही नहीं थी।

शाहजी भी कुछ खिन्न हुये और आगे बढ़ चले। आगे बीजापुर की मस्जिदों और गुम्बदों की झलक दिखाई दी। सामने ही संसार प्रसिद्ध गोल-गुम्बद थी—कहा जाता था कि वह संसार में सबसे ऊँची गुम्बद थी। वह रोम के 'पैन्थियन' से भी भारी थी। उससे शहर का रंग बड़ा मोहक दिखायी दे रहा था।

उसके सामने आते ही शाहजी ने कहा—"शिवा ! देखो, इसकी दीवालों पर नीलम और जवाहरात जड़े हुये हैं। सामने ही सोने के तारों से खुदा है—"यह सुल्तान मोहम्मद का मक़बरा है जिसका स्थान स्वर्ग में है।"

युवक शिवा ज्यों-ज्यों उन चीजों को देख रहा था त्यों-त्यों जैसे बिगड़ता चला जा रहा था और सर्वाधिक आवेश उसमें उन शब्दों को सुनकर भर रहा था जो उसके पिता के मुख से निकल रहे थे और जिनसे तारीफ के फव्वारे से फूट रहे थे परन्तु शिवा शान्त होकर सब सुन रहा था। अपनी बातचीत में पिता के समक्ष कोई उद्दण्डता तो वह

ला नहीं सकता था इस कारण चुपचाप वह सब देख रहा था और सुन रहा था।

किन्तु कलाकृति—वह पत्थर मन को भी मोहे नहीं ऐसा कैसे सम्भव है ? कोई सुन्दर वस्तु मनुष्य द्वारा बनायी गयी हो अथवा परमात्मा ने कहीं एकान्त में गढ़ी हो—उसे देखकर जी न लुभावे कैसे हो सकता है। आप चाहें रो रहे हों—एक खिलखिलाता बालक आपके सामने आ जाये या वैसा सौन्दर्य जिसे स्वर्गीय कह दें—आपको ललचा रहा हो—उस समय उत्साह से आप उसकी ओर लपकें नहीं यह दूसरी बात है परन्तु देखकर आप का मन भरमा न जाये यह असम्भव है। उसी रूप में शाह जी ने जब शिवाजी से कहा :

"देखो ! यह इब्राहीम राउजा है। वह ताज सुल्ताना की क़ब्र और वह मक़बरे की ख़ास इमारत जो संगमरमर के काम का एक ख़ास नमूना है। उसकी सफेद पत्थर की बनी झालरें इतनी बारीक और खूबसूरत हैं कि लगता है जैसे खुशनुमा सोने-चाँदी के तार झूल रहे हों। इस इमारत में अन्दर चारों ओर फूलों की क्यारियाँ बिखरी हुयी हैं। बड़े-बड़े और मन को लुभाने वाले फव्वारे हैं जिनमें स्फटिक मणि सा स्वच्छ और निर्मल जल उछालें मारता है। इसमें ही सुल्तान की क़ब्र है जिसके ऊपर संगमरमर का एक क़लमदान बना हुआ है और जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सुल्तान लिखने-पढ़ने का शौकीन था। सुल्ताना की कब्र पर बहुत बढ़िया शायरी खुदी हुयी है। एक जगह लिखा है—"सालोमन की बेगम की तरह खूबसूरत, खुशमिजाज और खामोश थी चांद सुल्ताना जो इस दुनिया को छोड़कर बहिस्त चली गयी।"—इसके उत्तर की ओर के फाटक पर मर्लिक सन्दल ने खोदा है—"इस इमारत पर स्वर्ग भी ताज्जुब करता है। बहिस्त के बगीचे खूबसूरती में इसकी नकल करते हैं और यहाँ का एक-एक पेड़ स्वर्ग के उस पाकीदा बगीचे के एक-एक 'साइप्रस' के वृक्ष के समान है। तभी स्वर्ग के एक फरिस्ते ने एक बार पुकार कर कहा था—"जो दिल को

खुशनुमा लगे वही चाँदबीबी की बढ़िया मज़ार हो सकती है।"

इसको देखकर ही शिवाजी का हृदय उछल गया। उदासी हट गयी। स्वयं दबे ओठों निकल गया—"वाह!"

और तब पिता-पुत्र आगे बढ़े। शाहजी ने देखा—यहाँ शिवाजी का मन भी प्रसन्न हुआ। तब आगे चलकर सामने आया—'यादगार का महल'—वह महल जहाँ चाँदी का एक गुलदस्ता रक्खा है और जिसमें मोहम्मद साहब के दो बाल रक्खे हुये हैं। इसमें पच्चीकारी का बहुत काम इटली के पेन्टरों ने किया है।

इस प्रकार बीजापुर के महत्वपूर्ण स्थानों को देखते-घूमते शाहजी एवं शिवाजी सुल्तान के दरबार में घुसे।

सामने ही आदिलशाही सुल्तान अपने शाही तख्त पर बैठा हुआ था। एक हाथ में सोने की चाभी और दूसरे में वह तलवार लिये हुये था। उसका एक पैर विश्व के गोले पर टिका हुआ था। उसके ऊपर एक ग़ुलाम सोने का छाता ताने हुये था। सुल्तान उस समय तातारी कोट पहने था जिस पर ज़री का काम हो रहा था।

जिस समय शाहज़ी और शिवाजी दरबार में पहुँचे उस समय 'सिजदा' की रस्म पूरी की जा रही थी। एक-एक करके दरबारी सुल्तान के सामने आ रहे थे और अपने हाथ से सुल्तान को सलाम करते-करते जमीन तक झुक जाते थे।

शाहजी ने भी आगे बढ़कर सुल्तान को सिज़दा किया। सुल्तान मुस्कराया। शिवाजी ने वह देखा। उन्हें जैसे अपने आप क्रोध चढ़ आया। जैसे वे खड़े-खड़े ऐंठने लगे और उसी ऐंठ में शिवाजी ने मराठा ढंग से ही थोड़ा झुककर सुल्तान को सलाम कर दिया।

सुल्तान ने देखा-छोकरे ने उसे सिज़दा नहीं किया।

शाहज़ी ने देखा—शिवाजी ने सुल्तान को सिज़दा नहीं किया। वे थर्रा गये। उन्होंने दबे शब्दों में कई बार शिवा से कहा कि वह सुल्तान को सिज़दा करे।

'आदर देने के लिये उतना काफी है"—शिवाजी ने स्पष्ट उत्तर दे दिया ।

दरबार में तहलक़ा मच गया । सुल्तान को शाहजी के लड़के ने सिजदा नहीं किया—बात फैलते देर न लगी ।

इस बात से सुल्तान की तबियत बिगड़ी । शाहजी का सुल्तान काफी ख्याल करता था अन्यथा वह अपमान उसके लिये कम नहीं था । तभी उस कुड़कुड़ाहट में सुल्तान ने उसी समय दरबार बरख़ास्त कर दिया ।

शाहजी ने शिवाजी पर विशेष ताड़ना दी किन्तु शिवाजी टस से मस नहीं हुये ।

शाहजी सोचते रहे—शिवाजी को आदिलशाह के दरबार में लाकर उन्होंने ग़लती की ।

: १९ :

बंगलौर लौटने पर लगा जैसे उस एक ही बात से शाहजी का जी पुत्र से खट्टा हो गया। वे बिगड़े भी बेहद। परन्तु शिवा ने परवाह नहीं की। शाहजी के लिये शिवा ने एक फुलझड़ी छोड़दी और माँ जीजाबाई उनकी ख़बर लिये रहीं। उन्होंने अन्त में विवश कर दिया कि वे शाहजी को बंगलौर से बिना लिये टलेंगी नहीं। शाहजी किसी प्रकार जीजाबाई और शिवा को बंगलौर से टालना चाहते थे। वे सोचते थे कि शिवा यदि बंगलौर में रहा तो सुल्तान की भौहें व्यर्थ तनी ही रहेंगी दूसरे जीजाबाई की झक-झक से भी शाहजी पक गये थे। उनकी अधिकारों की माँगों और उस झगड़े से अब वे तंग आ गये थे अतः पंडितों से विचरवा कर उन्होंने एक दिन अपने आप शुभ मुहूर्त निकलवाया और बोले :

"जीजाबाई ! जो हुआ सो हुआ। मैंने सब ठीक कर लिया है। अमुक दिवस तुम्हें, व शिवा को पूना के लिये प्रस्थान करना है। इतनी-इतनी सेना तुम लोगों के साथ जायेगी। इतनी रसद रहेगी। मैंने इतनी जवाहरात और इतनी मुद्रायें अलग कर दी हैं…"

मुद्राओं की बात सुनकर जीजाबाई बिगड़ गईं :

"मुद्राओं का लोभ देते हो। सैंकड़ों मील दूर पड़े रहकर अब चाहते

हो कि हम सब फिर उसी भाँति अनाथों की तरह दुबारा पूना भेज दिये जायें। हम यों अकेले पूना जाकर क्या करेंगे। वहाँ का इन्तजाम·· काम-धन्धा···"

"जीजाबाई ! पूना का इन्तजाम ठीक चल रहा है। बस अपने लड़के को संभाले···" शाहजी की बात पूरी भी न हो पायी थी कि बेहद बिगड़ते हुये जीजाबाई ने कहा :

"खबरदार जो शिवा को मेरा लड़का कहा। या फिर कह दो कि तुमसे कोई मतलब नहीं। और मेरा लड़का बिगड़ा क्या है ? वह बिल्कुल ठीक है। वह तो उलटा बाप के बिगाड़े हुये को संभालने में लगा है। जानते हो उसने मवालियों की कितनी बड़ी सेना इकट्ठा की है ? ये साथ कितने आये हैं ? पूना चलकर देखो। अब तो किसी दिन यह तुम्हारे बीजापुर की 'मलिके-मैदान' पर नगाड़ा बजायेगा तभी तुम्हारी अक्ल ठिकाने आयेगी।"

और सुनते ही शाहजी की अक्ल उसी समय जैसे ठिकाने आ गयी। 'मलिके-मैदान' पर जैसे डंका पिटता सुनायी देने लगा। उनके तो देवता कूच कर गये। एँ ! कहीं शिवा ! बीजापुरी सल्तनत के विरुद्ध ही कुछ तैयारियाँ तो नहीं कर रहा है। वे बोले—"शिवा ! मैंने आदिल-शाही का नमक खाया है। उसके खिलाफ कभी कोई कार्यवाही मत करना।"

"जी हाँ"—उसी तत्परता में शिवा ने कह दिया।

'जी हाँ'—शाहजी ने भी सुना परन्तु सन्तोष नहीं हुआ। उन्हें खटका बना रहा कि यदि अब वे पुत्र से दूर रहे तो पुत्र अपनी जागीर में कुछ ऊधम जोतेगा। जो फौज शिवा के साथ आयी थी उसमें भी मवाली लोगों के जो नवजवान थे वे बस केवल लड़ाकू दिखायी देते थे। उनको देखकर शाहजी शंकित होते थे। ये सब नवजवान मिलकर कुछ ऐसा न करने लगें जिससे उनकी जो साख बीजापुरी सुल्तान के सामने है वह नष्ट हो जाये। इसी कारण शिवाजी के हजार कहने

पर भी वे शिवाजी के मवाली साथियों में से एक को बीजापुर नहीं ले गये। शिवा को तो वे समझते थे कि हर समय साथ रक्खेंगे अतः कोई शरारत नहीं हो पावेगी। फिर भी दरबार की घटना हो ही गयी। यों शाहजी भली प्रकार समझ चुके थे कि लड़का पूरी तरह स्वतन्त्र विचारों का है और गति-विधि में उनसे पूरा मतभेद रखता है।

अब उलझनें दूसरी थीं। एक तो जीजाबाई आईं परन्तु अपनी सौत तुकाबाई से उन्होंने एक क्षण को बात नहीं की। कुछ चर्चा आई भी तो उन्होंने कह दिया :

"मैं अपने लड़के के काम से आई हूं। मुझे और किसी झंझट से क्या लेना-देना या मुझे किसी से मिलने-जुलने की क्या ज़रूरत ?"

कुछ भी हो—तुकाबाई की टोक पर शाहजी को स्वयं ही इस बात का ध्यान रहा। दूसरे जीजाबाई अब पूना जाने का नाम नहीं लेती थीं उनकी मांग थी कि शाहजी भी बंगलौर छोड़ें। बहुत रोष में उन्होंने इतना तक कह दिया :

"पूना का रंगमहल इतना बड़ा है कि वहाँ दूसरी पत्नी को अलग लेकर भी मौज से रहा जा सकता है।"

उनके हृदय की चोट ऐसी ही थी। उस तेज़ी में वे ऐसा कह भी सकती थीं। जो भी हो शिवा को पूना भेजने की बात अब एक समस्या बनकर शाहजी को पीड़ा दे रही थी। अन्ततः उन्होंने पुत्र को समझाया-बुझाया और उसे राज़ी कर लिया कि जिस दिन शाहजी कहेंगे उस दिन शिवा बंगलौर छोड़ देगा।

× × × ×

और एक दिन—

बहुत सुबह से ही शाहजी के महल के सामने चहल-पहल प्रारम्भ हो गयी। नौ बजते-बजते पचीसों हाथी दरवाज़े पर झूमने लगे। उनके घंटों के स्वर महल के कंगूरों को हिलाने लगे। देखते-देखते घुड़सवार

सैनिकों की अनेक टोलियाँ महल के सामने आ लगीं। उनके साथ ही बहुत अधिक संख्या में पैदल सैनिक क़तारों में लगे दूर तक फैल गये।

इतने हाथी, घुड़सवार तथा पदाति सैनिकों को देखकर शाहजी के महल में कौतूहल जागृत हुआ कि ये सब महल के सामने क्यों एकत्र हुये हैं ?

शाहजी ने उत्तर दिया :

"शिवा की शोभा-यात्रा निकलेगी।"

और बंगलौर में शिवा की शोभा-यात्रा निकाली गयी। आगे-आगे तुरही और नगाड़ों की गाड़ियाँ, उनके पीछे भगवा झंडा फहराते हुए झूमते हाथियों की टोलियाँ तदनन्तर पदाति सेना; पदाति सेना के पश्चात् पूना से आये मवाली सैनिकों की घुड़सवार टोलियाँ उसके पश्चात् बंगलौर के मराठा सैनिकों के घुड़सवार दल शोभा-यात्रा में क़दम-क़दम आगे बढ़ने लगे।

शुभ लग्न लगते ही शाहजी ने शिवा को आसन से उठाया और स्वयं साथ लेकर चले। साथ में बंगलौर के सम्भ्रांत नागरिक शिवा को दुलराते-इठलाते आगे बढ़ गये।

भव्य द्वार के बाहर आते ही इस समूह को एक विशेष दल मिला जिसमें चुने कुछेक मराठा, पेशवा, सरदार एवं कुलकर्णी खड़े थे जो शाहजी, शिवाजी एवं अन्यान्य व्यक्तियों के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। सभी लोगों के एकत्र होने पर जुलूस बढ़ने लगा। बहुत लम्बा जुलूस था। शाहजी ने काफ़ी साज-सामान इकट्ठा किया था। समूचे जुलूस के पीछे कुछ खच्चर गाड़ियाँ चल रही थीं जिन पर सामान लदा था और भाले वाले सैनिकों का पहरा साथ चल रहा था। उन गाड़ियों में क्या था—यह किसी को पता नहीं था। हाँ, अनुमान यह अवश्य था कि वे युद्ध गाड़ियाँ शोभा-यात्रा में प्रदर्शन के लिये निकाली गयी थीं।

तम्बूरों, तुरही और नगाड़ों के कान फोड़ने वाले स्वरों को लेकर इस जुलूस ने बंगलौर की सड़कों पर भ्रमण किया।

मराठा सरदारों और कुलकर्णियों का जो दल चल रहा था वह मुख्य भीड़ से कुछ हटकर अलग ही चल रहा था ।

एक सजे हुए हाथी पर शाहजी एवं शिवाजी चल रहे थे । शाहजी ने शिवाजी को बेशकीमती कपड़े पहना रक्खे थे । कामदानी का साफा, बंडी के नीचे रेशम का झिलमिलाता अंगा और मलमल का पाजामा दूर से झलक रहा था । शिवा बडे बांकेपन से लाल रोली का टीका, अपने पिता के अनुरूप ही, लगाये था । दाहिनी बगल में तलवार लटक रही थी । शाहजी एवं शिवाजी दोनों ही एक सजे हुये हाथी पर शोभायमान थे । हाथी पर लाल मखमल की अम्बारी पड़ी हुयी थी जिस पर सोने-चाँदी का काम बना हुआ था । वह हौदा जिसमें ये पिता-पुत्र अपनी निराली शान के साथ झूम रहे थे—समूचा सोने-चाँदी का था ।

धीरे-धीरे उस जुलूस का निर्दिष्ट स्थान आ गया । यह वह स्थान था जहाँ एक प्रकार से बंगलौर की सरहद समाप्त होती थी । जैसे पहले से ही सब कुछ निर्देशित था । चलते-चलते जुलूस अपने आप रुक गया ।

शाहजी को तो ज्ञात ही था । शाहजी ने अपना हाथी रुकते ही शिवा की ओर देखा और बोले :

"तो शिवा ! आज और इसी समय तुम्हें पूना जाना है । यह समूचा जुलूस जो तुम्हारे सामने खड़ा है तुम्हारे साथ पूना जाने को है । ये हाथी, घोड़े, सैनिक, गाड़ियाँ सब कुछ तुम्हारे साथ पूना जायेंगे और ये तुम्हारी ही सम्पत्ति हैं । ये पीछे गाड़ियों में सोना, चाँदी और जवाहरात भरा हुआ है । उससे और पीछे की गाड़ियों में रसद का सामान है । और......उठो मेरे साथ हाथी से नीचे उतरो"—कहते-कहते शाहजी ने महावत को संकेत किया ।

हाथी से उतरने पर शाहजी शिवा को लेकर जनसमूह की ओर बढ़े ।

शिवाजी यन्त्रवत पिता के साथ चल रहे थे । वह अवाक् थे कि उन्हें पना भेजने के लिये पिता ने इस प्रकार की योजना क्यों गढ़ी ? अधिक सोचें इसके पूर्व ही शिवा ने अपने को उस दल-विशेष के सामने

खड़ा पाया जो महल के बाहर जुलूस प्रारम्भ होते समय उनकी प्रतीक्षा में खड़ा था।

इस स्थान पर शाहजी ने शिवा को सम्बोधित कर कहा :

"शिवा ! ये हैं श्यामाराव नीलकंठ पेशवा। ये है बालकृष्ण पन्त मजूमदार। और लम्बे से ये हैं बालाजी हरी मजलिसी। ये हैं रघुनाथ बालाजी कोर्डे। ये देखो छोटे से; ठिगने से हैं सोनोपन्त दाबिर। और ये ज़रा भारी से हैं रघुनाथ बलाल अत्रे चिटनिस। ये सब महानुभाव तुम्हारे साथ पूना जायेंगे। ये तुम्हारे शुभचिन्तक हैं। ये तुम्हारे मंत्रियों के रूप में कार्य करेंगे। ये विधान, व्यवस्था, राज्य संचालन एवं अन्यान्य उसी प्रकार के कार्यों के पूर्ण ज्ञाता हैं। इन सबको अपने यहाँ पृथक-पृथक् विभाग देना और इनको अपना परम हितैषी तथा सहयोगी मानना।"

इसके पश्चात् शिवाजी इन तमाम लोगों से गले मिले। उनसे हाथ मिलाये। शिवाजी को तो वह सब दृश्य चलचित्र सा प्रतीत हो रहा था।

तभी शाहजी ने शिवाजी से और आगे बढ़ने को कहा।

"शिवा ! ये मेरे बहुत पुराने साथी और कुछ मंजे हुए मराठा सरदार हैं। इन्होंने बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी हैं। ये भी तुम्हारे साथ पूना में रहेंगे और तुम्हारी सेना का संचालन करेंगे।

"जाओ ! सबसे बड़ा मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। सम्मानपूर्वक पूना जागीर की व्यवस्था का संचालन करो।

"तुम्हारी माता और बहू को मैं पीछे भेज दूँगा। उन्हें कुछ दिन अभी बंगलौर में ही रहने दो।"

"इसकी आवश्यकता नहीं है। हम भी पूना जा रही हैं। जुलूस प्रारम्भ होते ही हम समझ गयी थीं कि आज इस समय इतना संस्कार पूर्ण होना है अतः हम भी पूना जाने के लिये इस शोभा-यात्रा के पीछे

पीछे ही चल रही थीं"—आगे बढ़कर जीजाबाई ने कहा।

बहू उनके साथ थी।

शाहजी जीजाबाई की चातुरी पर मन ही मन हैरान थे। वे सोचते थे कि वे स्वयं ही बहुत बड़े आयोजक हैं परन्तु इस प्रकार उनकी योजना की गन्ध लेकर जीजाबाई ने जैसे उन पर अपनी विजय स्थापित कर दी।

"ठीक है", तत्काल शाहजी ने प्रकट किया—"एक हाथी और पीछे भेजो।"

और शाहजी की आवाज पर एक हाथी पीछे आगया।

अब इस हाथी पर बहू व जीजाबाई बैठीं और दूसरे हाथी पर शिवाजी। इस समय उस भारी सरंजाम को देखकर जीजाबाई के ओठों पर मन्द मुस्कान खिलखिला रही थी। ज्यों अपने पति के प्रति उनके सब गिल्ले-शिकवे थोड़ी देर के लिये समाप्त हो गये थे।

और वह जुलूस ज्यों का त्यों विदा करके शाहजी एवं अन्यान्य नागरिक पैदल ही नगर की ओर चल दिये।

× × ×

मार्ग में शिवाजी निरन्तर सोचते चले जा रहे थे कि पिताजी ने इस समय के पहले तक अपनी योजना कैसे पूर्णतः गुप्त रक्खी और इतना सामान एकत्र कर लिया। शिवाजी निरन्तर अपने पिता की व्यवस्था के सम्बन्ध में विचारते जा रहे थे कि कैसे जुलूस का सम्पूर्ण कार्य पूर्ण व्यवस्थित था यहाँ तक कि इतने सैनिकों तथा अधिकारियों के बिस्तर तक पूरी तरह व्यवस्थित रूप में मालगाड़ियों पर लदे थे।

यह जुलूस एक ऐतिहासिक जुलूस था। उसी रूप में वह अब पूना की ओर प्रस्थान कर रहा था। इसमें ऐतिहासिक पुरुष सम्मिलित थे। सर्व श्री बालकृष्ण पन्त मजूमदार, श्यामाराव नीलकंठ पेशवा, बालाजी हरी मजलिसी, रघुनाथ बालाजी कोर्डे, सोनोपन्त दाबिर और रघुनाथ

बलाल अत्रे चिटनिस सरीखे राज्य कुशल मन्त्रियों के अतिरिक्त शिवाजी के अपने साथियों में गोमाजी पाना सम्बल; पेशाजी कन्क, तानाजी मलूसरे, बाजी परुलकर, बाजी राव जेदे भी जलूस में चल रहे थे। यही नहीं अनेकानेक उद्भट लड़ाकू सरदार व शाहजी के चुने हुये सैनिकों का एक बड़ा दल घुड़सवारों व पदाति सेना के रूप में पूना की सुरक्षा एवं शिवाजी को बल प्रदान करने के हेतु पूना की ओर जा रहा था।

: २० :

बंगलौर से लौटकर पूना में पहले दिन शिवाजी का दरबार लगा हुआ था। ऊँचे स्वर्ण सिंहासन पर शिवाजी बैठे थे। उनकी दाहिनी ओर दादाजी कोणदेव विराजे हुये थे। उनका यह तेजोमय रूप—जिस पर आयु के अनुभवों की सलवटें पड़ चुकी थीं परन्तु उत्साह अभी भी समरूप था—दूर से झलक रहा था। इधर-उधर, कार्य संचालक मंत्रि-गण बैठे थे। अनेक भावी योजनाओं पर विचार-विमर्श चल रहा था। मवाली प्रान्त पर पूर्ण अधिकार कर लेने के सम्बन्ध में बहुत देर से बात-चीत हो रही थी। इस प्रकार के कार्य के लिये, विशेषता यह थी, कि दादाजी कोणदेव की पूरी सहमति शिवाजी को प्राप्त थी और तभी ऊँच-नीच देखने-समझने के बाद मंत्रि-मंडल ने निर्णय ले लिया कि मावल के पर्वतीय-प्रदेशों पर पूर्ण आधिपत्य स्थापित किया जाये।

और देखते-देखते थोड़े समय में ही समूचा मावल प्रान्त—वे सघन पहाड़ियाँ, वह रण-बांकुरों का प्रान्तर शिवाजी के हाथों में आ गया।··· तब शिवा राजा का प्रभुत्व सह्यादरी की उन कन्दराओं पर जम गया। अब वहाँ के मवाली शिवा राजा की सेना के सिपाही थे। अब मावलों की वे बारहों पहाड़ियाँ शिवा राजा के जय के नारे गुंजाने लगीं।

मावल पहाड़ियों की जीत पर पूना में खुशियाँ मनाई गयीं। पूना

वासियों ने दीवाली मनाई। गरीबों को सदावर्त बाँटे। घर-घर कीर्तन हुये। राम और कृष्ण के भजनों से आकाश मण्डल प्रतिध्वनित हो गया। शिवा राजा का एक खास दरबार हुआ। मध्यान्तर में राज-दरबार में एकत्र होकर पूना के गण्यमान नागरिकों ने शिवा राजा का गुण-गान किया।

दरबार लगा हुआ था। सिंहासन पर शिवा राजा बैठे हुये थे तभी द्वारपाल ने सूचना दी।

"महाराज की जय! एक विदेशी आया है।"

सभी दरबार वालों ने समझा कि विदेशी तो न जाने कौन-कौन होते हैं अतः बात उपेक्षा सहित टाल दी गयी। द्वारपाल चला गया। वस्तुतः यह उपेक्षा नहीं व्यस्तता थी।

एक क्षण बाद ही द्वारपाल दुबारा आकर बोला :

"महाराज की जय! इंगलैण्ड का एक व्यक्ति आया है जो अपना नाम स्टीवेन्स बताता है...।"

समूचे दरबार में निःस्तब्धता छा गयी। लोगों को कुछ विशेष आश्चर्य हुआ। तभी शिवाजी ने आदेश दिया :

"बुलाओ।"

दूसरे ही क्षण द्वारपाल ने मिस्टर स्टीवेन्स को लेकर दरबार में प्रवेश किया।

इंगलैण्ड के उस विदेशी के स्वागत में शिवाजी आसन से उठे और आगे बढ़कर उसे साथ ले आये। तब उसे अपने पास ही एक दूसरे सिंहासन पर बैठाया। सब लोग शान्ति पूर्वक बैठ गये। सभी दृष्टियाँ मिस्टर स्टीवेन्स पर टिकी हुई थीं। मिस्टर स्टीवेन्स ने भी एक बार समूचे दरबार पर दृष्टिपात किया और तब शिवाजी को ठेठ मराठी भाषा में ही सम्बोधित करके कहा :

[१] "आपणास विशेषपाल: । श्री शिवाजी राज्यांच्या मराठी दरबार ची भेट माझे अहोभाग्य होय ।"

एक इंगलैण्ड वासी के द्वारा अपने प्रान्त की भाषा सुनकर सभी विशेष हर्षित ही नहीं चकित भी हुये । तत्काल ही शिवाजी ने उत्तर दिया :

[२] "आमच्या सन्मान्य याव्हण्यांचे स्वागत करताना आम्ही अत्यन्त खूष आहोत ।"

इंगलैण्ड प्रवासी मिस्टर स्टीवेन्स एवं शिवाजी को अपनी मातृ-भूमि की भाषा में बातचीत करते देखकर शिवा राजा के दरबारी बहुत प्रसन्न हो रहे थे । तभी मिस्टर स्टीवेन्सन ने कहा कि उन्होंने महाराष्ट्रीय भाषा में अपनी महान कविता पुस्तक का अनुवाद करके छापा है । तब मराठा भाषा की प्रशंसा करते हुये फादर स्टीवेन्सन ने कहा :

[3] "मराठी भाषा आणि बोलीची सुन्दरता रत्ना मधें सफायर

---

[१] "It is my good privilege to meet your honour particularly glad to see the Maratha Darbar of Shivaji Raje."

"आप महामहिम के दर्शन का सौभाग्य पाकर मैं कृतकृत्य हुआ । विशेषत: शिवाजी राजे महाराज का मराठा दरबार देखकर मैं अधिक प्रसन्न हूं ।"

[२] " आप सदृश अतिथि का सत्कार कर हमें विशेष प्रसन्नता हो रही है ।"

[3] " Like a Jewel among pebbles," he said, "Like a saphire among Jewels, is the excellence of the Marathi language and tongue. Like the Jasmine among the blossoms, the musk among the perfumes, the peacock among

अथवा गारगोट्या मधें रत्ना अशो आहे असे त्याने लिहो ले आहे ज्या प्रमाणे फुलामधें जासमिन, सुवासा मधें कस्तूरी, पक्ष्यां मधें मोर, नक्षत्रांन इनोडेयाक त्याच प्रमाणें सर्व भाषां पेक्षा सुन्दर मराठी।"

सुनकर सभी बहुत प्रसन्न हुये और अपनी भाषा की प्रशंसा से गर्वोन्नत होते हुये फादर स्टीवेन्स की सराहना करते रहे।

शिवाजी के दरबारियों को अपना परिचय देते हुए अन्त में फादर स्टीवेन्स ने कहा कि वे पहले इंगलैण्ड प्रवासी हैं जिन्होंने भारत की धरती पर पैर रक्खा था। उन्होंने बताया कि भारतीय भाषा में अनेक कवितायें उन्होंने लिखी हैं तथा एक व्याकरण भी तैयार की है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हेरोइंग आफ हेल' का मराठी भाषा में अनुवाद किया था।

एक 'केथोलिक' के रूप में उन्होंने इग्लैंण्ड छोड़ा था। तब वे बहुत दिन रोम में रहे और पूर्व की ओर आने वाले 'जसूइट मिशन' के साथ इधर चले आये।

इस प्रकार उन दिनों मराठा इतिहास के पुनरुत्थान में राजनीतिक चेतना के साथ-साथ जब समर्थ गुरू रामदास एवं तुकाराम की रचनाओं में अपने जीवन की नवज्योति प्रकट हो चुकी थी, तब फादर स्टीवेन्स का परिचय पाकर तथा मराठी भाषा सम्बन्धी उनके विचारों एवं कार्यों को सुन कर शिवा राजा सहित वहाँ के समस्त दरबारी विशेष गर्व का अनुभव करते रहे।

---

birds, the Zodiac among the stars, is Marathi among languages."

"पारदर्शी पत्थरों में रत्न," उन्होंने कहा–"और रत्नों में नीलमणि के समान मराठी भाषा तथा बोली का महत्व है। वह पुष्पों में 'जसमिन' है। सुगन्धियों में कस्तूरी है। पक्षियों में मयूर के समान है। नक्षत्रों में शशि मण्डल है। ऐसी है भाषाओं में मराठी भाषा।"

फादर स्टीवेन्स का दरबार में अनेक प्रकार से सत्कार किया गया। उनको बहुत सा सोना, जवाहरात तथा कई सौ हून भेंट किए गए।

बाद में फादर स्टीवेन्स को बहुत दिनों तक राजकीय अतिथि-शाला में अतिथि बनाकर रक्खा गया।

× × ×

अब शिवा राजा की राजसभा का कार्य प्रतिदिन ही सुचारु रूप से चल रहा था। निश्चित समय पर शिवा राजा सिंहासन पर बैठते। दादा जी कोणदेव सभी राज-कार्यों में शिवाजी को इसी प्रकार क्रियात्मक शिक्षा दे रहे थे।

शिवा राजा एक दिन दरबार में बैठे थे तभी वाहक ने एक पत्र उन्हें लाकर दिया। शिवा राजा ने वह पत्र पढ़ा। एक बार पढ़ा, दुबारा पढ़ा और तब उसे दादाजी कोणदेव की ओर बढ़ा दिया। पत्र में लिखा था :—

प्रिय शिवा !

संलग्न पत्र को पढ़ कर परिस्थिति का अवलोकन करना।

—नरस प्रभु

संलग्न-पत्र (फरमान के रूप में जिसे बीजापुर के शाह ने कारी के कन्होजी जेडे के पास भेजा था)—

"शाह जी भोसले को बेइज्जत करके बीजापुर दरबार से हटा दिया गया है। अब हमें ऐसी खबर मिली है कि उसके सरबराकार दादाजी कोणदेव ने कोन्धाना के किले पर मुख़ालिफ़ाना और गैर-कानूनी कार्यवाहियाँ शुरू कर दी हैं। हमने अपनी मिल्कियत को उस हिस्से पर कायमवजूद रखने के लिए खण्डोजी और घोरपडे उनके ख़िलाफ भेजे गये हैं। तुमको हुक्म दिया जाता है कि अपनी पूरी ताक़त को लेकर दादाजी ऐसे दुश्मन को नेश्तनाबूद करने में उन लोगों

की मदद करो। इस काम को अंजाम देने पर तुम्हें काफ़ी इनाम दिया जायेगा।"

—बहुक्म—सुल्ताने, आदिलशाह
बीजापुर।

दरबार में सन्नाटा छा गया। "शाह जी भोसले को बेइज्जत करके बीजापुर दरबार से हटा दिया गया है—" यह सूचना पहली बार शिवाजी एवं अन्य लोगों को इस रूप में मिली थी। शिवाजी का चेहरा लाल हो गया। उनके गोरे रंग पर क्रोध की वह तेज़ी भी उस समय बड़ी भली लग रही थी।

दादा जी ने जब पत्र तथा संलग्न फरमान पढ़ लिया तो कह उठे :—

"अच्छा है इन धूर्तो के यहाँ अभी शिवा का नाम नहीं है।"

"अब हो जायेगा"—अत्यधिक तत्परता पूर्वक शिवाजी ने कहा और तत्काल उठ खड़े हुए—"दादाजी ! हम तोरना जा रहे हैं।"

"ज़रूर ! मेरी शुभ कामना तुम्हारे साथ है। सब बातों का ध्यान रखना। तोरना पर अधिकार करने में तुम्हें कठिनाई न होगी।"

× × ×

"जय......।"

"शिवा भवानी की जय।"

"मारुति बाबा की जय।"

"शिवा भवानी की जय-जय।"

तोरना के किले पर अधिकार करके जब सदल-बल शिवाजी लौटे तो अटूट धन-राशि उनके साथ थी। शिवा भवानी की महामाया से तोरना में न जाने कितना सोना, जवाहरात और मुद्रायें उनके हाथ लगीं। तोरना से पूना तक वे मराठे नवजवान उमंग में भर कर शिवा भवानी का जयकारा लगाते, उछलते, अपने घोड़ों को उछालते,

आपस में तलवार के खेल करते, मार्ग में भालुओं का शिकार करते, मराठा गीत गाते, भगवान श्री कृष्ण के गुणगान करते पूना पहुँचे।

सभी प्राप्त धनराशि जीजाबाई के सामने उड़ेल दी गयी। यह पहली राजनीतिक लूट का आनन्द था जिसे समूचे पूना ने प्राप्त किया। शिवा जी ने माँ के पैर छुये।

"खूब बाँटो। सेना के खर्च में लगाओ," जीजाबाई ने निर्देश किया।

माँ के चरणों से उठाकर वह धनराशि मातृभूमि के राज्य-कोष में जमा कर दी गयी और सेनाओं की भरती दूने जोश से होने लगी।

तोरना की उस विजय ने उन रणबाँकुरों के उत्साह दूने कर दिये और तब आगे के कार्य-क्रम बनने प्रारम्भ हो गये।

× × ×

"खूब बाँटो। सेना के खर्च में लगाओ," माँ के निर्देश में भावी कार्य-क्रम की रूपरेखा छिपी थी।

सेनायें बढ़ाओ—उस कथन में छिपा था। सेनायें बढ़ा कर स्वतन्त्र साम्राज्य की स्थापना करो—यह उस कथन में छिपा था। शत्रु का संहार करो—यह भी उस कथन में छिपा था।

वह रूप था जिससे माँ पुत्र को प्रोत्साहन दे रही थी।

जीजाबाई और दादाजी कोणदेव का वैसा ही आन्तरिक सहयोग शिवाजी को प्राप्त था।

शिवाजी के प्रत्येक कार्य में दादा जी की सहमति उन्हें प्राप्त होती थी।

दादाजी भी आन्दोलन के उस रूप को देख रहे थे जो सफलता की सीढ़ियों पर चढ़ रहा था। शिवाजी उसके मुखिया थे। संत तुकाराम उसके सांस्कृतिक चेतना प्रदायक थे। समर्थ बाबा रामदास धार्मिक एवं राजनीतिक प्रेरक के रूप में समर्थ सम्बल प्रदान कर रहे थे। शक्ति के रूप में मावल के रणबाँकुरों ने पूना के मराठे शेरों

का साथ कर लिया था और दूसरे प्रकार की शक्ति के रूप में तोरना की तरह शिवा भवानी कृपा कर रही थीं तथा अटूट धन राशि उस प्रकार प्राप्त हो रही थी। शनैः-शनैः महाराष्ट्रीय स्वराज्य का निर्माण हो रहा था।

और

शिवा जी स्वराज्य की स्थापना में अग्रसर थे।

: २१ :

तोरना को हस्तगत करने के पश्चात् एक दिन शुभ मुहूर्त में शिवाजी की सेनाओं ने सिंहगढ़ के प्रसिद्ध दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया।

तोरना में धन मिला। पूना में विस्तार चला परन्तु अब एक ऐसे स्थान की आवश्यकता भी थी जहाँ विशेष सुरक्षा हो सके। धन, जन, रसद, हथियार तथा दूसरे सामान यथा विधि रक्खे जा सकें। जो सब ओर से ऐसा घिरा हो और जहाँ आसानी से शत्रु की पैठ न हो सके। और यह जो दिन प्रतिदिन स्वतन्त्रता प्राप्त हो रही थी उसकी सर्वांगीणता का सुगमता पूर्वक आनन्द-उपभोग किया जा सके। जनता अपने को सुरक्षित समझ सके। इसी के लिये सिंह गढ़ का क़िला विशेष उपयुक्त माना जा रहा था और वह प्राप्त कर लिया गया।

और पूना में खुशियाँ जैसे दिन-प्रति-दिन उछलती चली आती थीं। नित-नूतन सफलतायें और उन सब में शिवाजी की विशेष दक्षता।

पूना वाले सिंहगढ़ विजय की खुशियाँ मना ही रहे थे कि खुले दरबार में एक दिन एक और पत्र आकर गिरा। उसी प्रकार वह पत्र भी दादा जी नरस प्रभु का ही था। उसमें भी उतने ही शब्द अंकित थे।

प्रिय शिवा,

संलग्न पत्र को पढ़ कर परिस्थिति का अवलोकन करना।

—नरस प्रभु।

इस पत्र के साथ भी वैसा ही फरमान था।

संलग्न-पत्र (फरमान के रूप में जिसे बीजापुर के आदिल शाह ने कारी के कन्हो जी जेडे तथा उसके देश पाण्डे दादा जी नरस प्रभु को सम्बोधित करके लिखा था)—

"शिवाजी राजे ने मुखालिफत का झंडा खड़ा किया है; मावलों की फौज इकट्ठी की है, रोहिडा का क़िला जीत लिया है और उसमें अपना कब्जा करके फौजें इकट्ठी की हैं। एक नया क़िला राजगढ़ को बना कर उसने अपनी ताक़त मजबूत की है। तुमने खुले तौर पर उसका साथ दिया और मालगुजारी दी है। शिरवल के थानेदार का हुक्म न मानकर तुमने उसकी-शिवाजी राजे की-बात मानी है। यही नहीं तुमने थानेदार को ऊट पटाँग जवाब दिये हैं। ये बातें बरदास्त के बाहर हैं। अगर तुमने फौरन ही शिखल के थानेदार का हुक्म न माना तो बिना किसी रू रियायत के तुम्हें मौत के घाट उतार दिया जायेगा।"

—बहुक्म सुल्ताने आदिलशाह
बीजापुर।

दरबार में इस फरमान की बहुत खिल्ली उड़ाई गयी और बीजापुर सल्तनत की स्थिति पर आँसू बहाये गये। शिवाजी ने पत्र को दादा जी कोणदेव की ओर बढ़ाते हुये कहा :

"दादा जी ! लीजिये; अब की आप के शिवा का नाम भी आ गया।"

दादा जी अपने पोपले मुँह से हँस दिये। वे बोले :

"यह पत्र स्वतः शिवा राजे की महान् विजय की घोषणा कर रहा है। मावलों की बारह पहाड़ियों को जीतने; तोरना में अथाह धन राशि

पाने और सिंहगढ़ जीतने के बाद रोहिडा में फौजी क़िलेबन्दी और तब राजगढ़ के निर्माण से अधिक दु:ख का विषय आदिल शाह को और क्या हो सकता है ? इतने थोड़े समय में क्या किसी ने कहीं इससे ज्यादा भी कुछ पाया है ," कहते हुये दादा जी ने फरमान को पलटा। उसके पीछे की ओर लिखा था :

प्रिय शिवा !

इस सम्बन्ध में तुम्हारा क्या उत्तर है ? लिखो, वैसा यहाँ समझ-सोच कर कुछ बीजापुर लिख भेजा जायेगा।

—नरस प्रभु ।

इस नोट को पढ़कर दादा जी कोणदेव ने कहा :

"नरस प्रभु को समुचित उत्तर लिख भेजना चाहिये ।"

"मैं लिखता हूं। आप देख लीजियेगा" शिवाजी ने उत्तर दिया।

तदनन्तर शिवाजी ने दादा जी नरस प्रभु को लिखा :

"आदिल शाह को ग़लत खबरें दी गयी हैं। न मैं न आप ही आदिल शाह के विरोधी बने हैं। इस सम्बन्ध में आप मुझ से मिलने का कष्ट करें। आप को परेशान होने की कोई ज़रूरत नहीं है। आपकी घाटियों का देवता–रायरेश्वर, समान रूप से आपको तथा मुझे उत्साहित करता है। वह हमें पर्याप्त शक्ति दे रहा है कि हम "हिन्दवी-स्वराज्य" की स्थापना करें। हम तो दैव के हाथों के खिलौने भर हैं। जो होना हो, हो। रायरेश्वर के सामने—दादा जी पन्त ने हमें जो सलाह दी थी और हमने जिस प्रकार की गुप्त-शपथें खाईं थीं उन पर टिकना हमारा धर्म है। उस रायरेश्वर की ही यह सब इच्छा है। साहस मत खोइये।"

यह पत्र लिख कर शिवा राजे ने दादा जी कोणदेव की ओर बढ़ा दिया। दादा जी कोणदेव ने पत्र को आद्योपान्त पढ़ा। एक बार पढ़ा; दो बार पढ़ा—तब एक पैनी नज़र शिवाजी पर फेंकी।

शिवाजी ने दादा जी की पैनी दृष्टि को समझा और बोले :

"दादाजी ! रायरेश्वर की ओर आपका ध्यान गया होगा कि मैंने

आप से कुछ छिपाया। ऐसा नहीं है। वास्तव में मैं जिन प्रयत्नों में लगा था उनके लिये चाहता था कि पूरे हो जावें तभी आप से कहूं। संकल्पों की बिना पूर्णता अथवा सफलता के उनका उद्घाटन मैं कुछ बहुत अच्छी बात नहीं मानता हूं। मावल पहाड़ियों की विजय के बाद मैं चाहता था कि रायरेश्वर का विस्तृत वृत्तान्त मैं आपको किसी दिन बताऊँ परन्तु इन क़िलों की जीतों में कोई अवसर ही नहीं मिला।…"

"किन्तु मैं वह सब सुनना चाहूँगा।…तभी तुम इतना ग़ायब रहते थे। मैं…अब समझा…", दादा जी ने हृदय में उल्लास भर कर कहा।

और तब संक्षेप में शिवाजी ने अपने कुछ अनुभव तथा गतिविधियों को बताया।

"इन सब विजयों का श्रेय एक मात्र तुम्हें है," दादाजी कोणदेव ने जैसे सीना तान कर कह दिया।

तत्काल ही दरबार में स्वर गूँजा :

"शिवाजी राजे की जय…।"

× × ×

जीत की खुशियों ने शिवा जी के सामने कुछ नवीन समस्यायें भी खड़ी कर दीं। जब अधिकाधिक लोग शिवाजी की ओर आकर्षित हुए तो उन्हें दिखा कि बेकारी या छोटे-मोटे धन्धों से तो अच्छा है सेना में भर्ती हो जाना। अब क्या था ? किसानों ने अपने हल-बैल छोड़े और ब्राह्मणों ने अपनी पोथी-पत्रा। चल दिए शिवाजी की फौज में।

भविष्यत् कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए मनुष्यों की फौज ही इकट्ठा करनी थी परन्तु इतना खाना-खर्च। तब शिवा जी ने ऊँची पहाड़ियों पर खड़े होकर अपने चारों ओर देखा। दूर-दूर तक ढलवाँ जमीन दिखाई दी और आगे लगा कि किनारों पर पानी हिलकोरें मार रहा है—समुद्र बह रहा है। तब वहाँ से समुद्र तक भूमि चाहिए अन्न को और साधन चाहिए धन एकत्र करने को।

तब सबसे पहले तो शिवाजी ने एक पत्र आदिलशाह को लिखा

जिसमें उन्होंने लिखा—"जनाब को भ्रम हो गया है। बीजापुर सल्तनत की मुख़ालिफ़त करने की कोई बात नही है। यहाँ जो भी सैनिक कार्य-वाहियाँ की जा रही हैं वे या तो स्वयं की रक्षा के लिए हैं या उन बर्बर जंगली पहाड़ी इलाकों में इन्तज़ामिया तरीके स्तेमाल करने के लिए हैं जिन्होंने इन्तजाम के नाम से कुछ जाना ही नहीं है और जो हमेशा आदमियों से नहीं भालुओं, सुअरों और जंगली जानवरों से लड़ते रहे हैं।"

तत्काल शिवाजी बाहरी ढंग पर यह नहीं दिखाना चाहते थे कि उन्होंने बीजापुरी सल्तनत के खिलाफ़ खुला विद्रोह प्रारम्भ कर दिया है क्योंकि अपनी नींव मजबूत बनाने के लिए अभी बहुत कुछ करना था।

आदिलशाह सुल्तान को पत्र लिख कर शिवा जी विचारों में तल्लीन बैठे थे और अपनी समस्याओं के सुझाव के सम्बन्ध में ध्यान कर रहे थे तभी एक गुप्तचर आया उसने कुछ कहा और चला गया। पल भर में शिवाजी का चेहरा चमक उठा। उन्होंने दृष्टि उठायी तो कल्पना में एक चित्र उतर आया :—

वह एक समुद्री प्रान्त है जिसमें ऊपरी मैदानों से अधिक सम्पदा भरी हुयी है क्योंकि वहाँ उतनी परेशानियाँ नहीं आयीं हैं जितनी ऊपरी मैदानों में आ चुकी हैं। वहाँ की जगहें अधिक सरसब्ज़ हैं। युद्धों का प्रभाव वहाँ कम है। किनारे-किनारे ऊँची पहाड़ियाँ हैं और बहुतेरे क़िले। वहाँ जहाँ तोते उड़ते हैं उनके नीचे लाल स्टाबेरी के पेड़ झलझ-लाया करते हैं। किनारे की भूरी झाड़ियों में न जाने कितनी समुद्री चिड़ियें चहचहाया करती हैं। जिनके किनारे की बस्तियों में फारस और अबीसीनिया के व्यापारी सुख-शान्ति से निवास करते हैं। सुना है वहाँ सुदूर पच्छिम के विदेशी भी हैं जो मौज से रहते हैं और मछ-लियाँ खाते हैं। किनारे के पेड़ों में अजीब तरह के फूल उगते हैं।

और शिवाजी निरन्तर चित्र उतारते रहे :—

वहीं है—वहीं वह बस्ती, आस-पास के प्रान्तों की जैसे राजधानी

जो ग्रीक वालों से भी और पहले से पीतल, ताँबा, लकड़ी ग्रौर जरी के कामों के लिए मशहूर रही है। परन्तु ग्रब जैसे धीमे-धीमे उसका ह्रास होता जा रहा है। मछुओं के छोटे, नीचे ग्रौर गन्दे मकान दूर तक फैले हुए हैं। एक पतली नदी है जो किनारे से बहती है ग्रौर जिसके दोनों किनारों पर पाम के पेड़ छाये हुए हैं। जंजीबार ग्रौर मस्कट के जहाज़ वहाँ ग्राकर लंगर डालते हैं ग्रौर ऊँचे मस्तूलों की मछली मारने वाली नावों के डांडों के छपाकों की आवाज़ें रात-दिन के सन्नाटों में गूँजा करती हैं। समुद्र की तेज़ हवा यहाँ दिन-रात टकराती है और उसी में हरे रंग के झंडे उड़ा करते हैं जिन पर वैसे ही ग्राधे चाँद ग्रंकित हैं क्योंकि उन इमारतों में रहने वालों का सीधा सम्बन्ध वहीं से है—उसी से—उसी बीजापुरी सुल्तान से जिसके लिए अभी उस दिन ख़बर ग्रायी थी कि वहाँ पिता की का ग्रपमान किया गया—ग्रच्छा। ग्रौर सोच कर शिवाजी ने दाँत किटकिटा लिए—वही है कल्यान—कल्यान।

यही ध्यान करते-करते शिवाजी की कल्पनाओं का कारवाँ धीमे-धीमे बढ़ने लगा। तभी एक ग्रौर ध्यान ग्राया—एक सुमुखि का। इधर वह शिवा को अधिक तंग कर रही थी। साई बाई से विवाह के अनन्तर थोड़े दिन बात कुछ दबी रही। एक तो साई बाई स्वयं घेरे रही दूसरे बंगलोर यात्रा सम्पन्न हुयी। यात्रा के पश्चात् इतने किले जीते गये कि उसका ध्यान ही भूल गया। आज ध्यान कुछ अधिक जोरों से दाब रहा था। ग्राज क्यों ? बात कुछ कल से ही दिमाग में चक्कर खा रही थी। कल ही उन्होंने एक सेवक को भेजकर पता लगवाया था।

वही नौकर ग्रनायास इस समय ग्राया ग्रौर कह गया :

"दक्खिन पोल से आगे वाले मारुति-मंदिर में ग्रारती के समय ··।"

ग्रौर शिवा राजे का मन मचल उठा। जाना है जाऊँगा। इधर लोक-मर्यादा के लिये जो रोकना पड़ा वह रुकेगा कैसे, कब तक ? ठीक है—वह घर बाजार में है तो लोग देखेंगे और क्या कहेंगे कि हाय ! हाय ! शिवा राजे ! ग्रब शिवा राजे बढ़ गया है न। बड़ा हो गया है

उम्र में भी। पद में भी। तो इससे क्या ? वह भी तो बड़ी हो गयी है—उम्र में। पद में नहीं तो बिगड़ने में। कितना बिगड़ने लगी है, वह। और ठीक ही है उसका बिगड़ना। माँ की जबरदस्ती कि बीच में साई बाई को फंदा दिया। बेमतलब। केवल सुन्दरता से ही क्या होता है। जब मन भी तो मिले।

और मारुति-मंदिर में भी तो आरती के समय भीड़ होगी। तो हो। मैं उसे अपने बाग़ में जो ले आऊँगा। उस समय यहाँ सन्नाटा रहेगा। तब ठीक। और बहुत मगन होकर शिवा राजे ने मारुति को—दक्खिन पोल वाले मारुति को मन ही मन नमस्कार किया और आसन पर से उठ खड़े हुये।

× × ×

"सगुने ? इतनी गुस्सा हो ? नहीं बोलोगी ?"

"क्यों, बोलूँगी क्यों नहीं ? बड़े आदमियों के राज्य में रहकर उनसे नहीं बोलूंगी तो रहूँगी कहाँ ?"

कुछ उत्तर न पाकर उस रूप सुन्दरी ने अपनी ओर से फिर कहना प्रारम्भ किया :

"कहिये, आप अच्छे तो हैं ? इतने काम-काज में लगे रहकर आज आपको मेरा ध्यान कैसे आ गया ? मैं तो यों सब सुन-सुन कर मन में पूजा कर ही लेती थी। आज दर्शन दिये—बड़ी कृपा की।...आपकी 'वे' तो अच्छी हैं ?"

फिर भी मौन देखकर वह षोडसी कहती ही गयी :

"ऐसे चुप-चुप खड़े रहकर नाखून कुरेदते रहने के लिये क्या इतने दिनों बाद इस पीड़ा देने वाली जगह ले आये हैं, मुझे ? क्या मैं पूछ सकती हूं कि यहाँ मुझे क्यों लाये आप ? देखिये, मैं कँवारी हूं। मुझे शादी करनी है। घर पर मेरी माँ है...।"

"सगुने !"—शिवा एकदम चीख़ पड़े।

"क्यों, क्या हुआ ? मैंने कोई ऐसी बात कह दी जिससे आपको दौरे आने लगे। आप चौंकने लगे ?"

"शिरके !" पुकारते हुये शिवा उस नवयौवना की ओर झपटे किंतु कोमलांगी सिहर कर पीछे हट गयी।

"इतने दिनों बाद की भेंट का अर्थ है कि सब शिकायतें एक साथ उगल दो"—शिवा ने कहा।

"हाँ !•••भेंट की जरूरत क्या आ पड़ी ?"

"मेरे लिये तुम्हारा अभाव-असह्य है।"

"झूठ।"

"तुम्हें पता चल जायेगा।"

"झूठ ।"

"तब तुम ऐसे नहीं कह पाओगी।"

"झूठ।"

"शिरके !"

"मैं बहरी नहीं हूं।"

"मुझे सगुने चाहिये।"

"वह मर गयी।—उसका भूत लोगे ?"

"तुम मुझ पर इतना अत्याचार करोगी ?"

"और तुम्हारे अन्याय ! क्या कहीं दुनियाँ में न्याय या सचाई है ?"

"मेरी विवशता को भी···।"

"विवशता का कभी-कभी दूसरा नाम रहता है झूठ, विश्वास-घात···।"

शिवा ख़ामोश थे।

तभी अचानक शिवा ने उस कुमारी के मुख की ओर देखा। आँसुओं की उस निर्झरिणी में तैरते आवेग से शिवा दहल गये।

सम्पूर्ण अतीत उन आँसुओं में घुला देखकर शिवा को स्वयं से ग्लानि हो रही थी। उनका अपना ध्यान था कि वे निर्दोष हैं परन्तु

आज उन्होंने जाना कि उनकी सगुने की दृष्टि में वे ही एकमात्र अपराधी हैं। तत्काल ही मन में उन्होंने एक दृढ़ संकल्प किया और उस लावण्य-मयी से बोले .

"आगामी बसन्त-पञ्चमी को मैं तुम्हारे साथ विवाह करूँगा।"

"झूठ…," आँसुओं से भीगी युवती के भर्राये गले से एक चीख़ता शब्द फूट पड़ा।

"हाँ, बिलकुल झूठ। किन्तु बसन्त आने तो दो"—अधिक आर्द्र होकर शिवा ने कहा।

"मैं आजजिसकी मंगेतर हूं क्या उसको भी तलवार से जीतोगे…?"

"शिरके! तो बात यहाँ आ गयी ?"

"न। साई बाई तक चली गयी," अपने को स्वयं कुछ स्वस्थ करते हुये युवती ने पुनः कह डाला।

शिवा ने देखा उनकी स्थिति इस ओर अत्यन्त दयनीय है। खेद की आवृत्ति से वे स्वयं हिले जा रहे थे ऊपर से इतने तीखे वाण…विवाह से पूर्व का उनका यह प्रणय इतना कटु हो जायेगा उन्हें इसकी किंचित सम्भावना न थी। तभी उन्होंने पश्चात्ताप रूप में नहीं अपितु संकल्परूप में निश्चय किया कि वे सगुने से विवाह करेंगे किन्तु अब सगुने को सम-झाना कठिन हो रहा था। क्योंकि वह कह रही थी :

"आज जो यह बात कह रहे हो वह पिछले एक वर्ष तक कहाँ चली गयी थी ? तब मेरी याद नहीं आयी ? तब मेरा अभाव असह्य नहीं था ?·· अब फिर मुझे बातों का शहद पिलाना चाहते हो। किन्तु मुझे प्यार का शहद नहीं अब आँसुओं की कड़वाहट ही पीने दो। वह उससे अधिक मीठा है"—कहते हुये किशोरी उठ खड़ी हुयी—"मुझे घर जाना है।"

और शिवा के देखते-देखते वह रूपकुमारी बाग़ की भीनी क्यारी की दूब को पीसती हुयी बढ़ी और चल दी। शिवा यथावत घास पर बैठे रहे। उनका यह साहस भी न था कि एक वर्ष पूर्व की उसी अल्ह-

ड़ता को वह उस नारी-रूप के सामने फिर प्रदर्शित कर सकते और वे बैठे के बैठे रह गये। वे उसे न रोक पाये। न रोकने बढ़े ही।

× × ×

और तब परिवार के समस्त विरोधों का प्रारम्भ उसी संध्या से हो गया।

"शिवा ! तुम अपने पिता की तरह नहीं कर सकते।...तुम्हें मैं दूसरा विवाह नहीं करने दूँगी"—माँ जीजाबाई ने बहुत बिगड़ कर कहा।

साई बाई ने तो उस क्षण से बोलना ही बन्द कर दिया।

किन्तु शिवा को सगुने की तत्काल आवश्यकता थी।

: २२ :

तब वह कारवाँ धीरे-धीरे समुद्र की ओर बढ़ चला। ऊपर सूर्य तप रहा था। हवा में गर्मी भरी हुई थी। कारवाँ का सरदार अपने समूचे प्रांत की एक साल की मालगुज़ारी खच्चरों, गधों और घोड़ों पर लाद कर आदिलशाही सुल्तान के यहाँ जमा करने लिये जा रहा था। मौलाना अहमद का कल्यान में केवल यही धन्धा था—अपने महल में मौज करना और बस साल में एक बार बीजापुर जाकर मालगुजारी जमा कर आना। कल्यान के बाजारों के बीच उसका एक बड़ा सा खूबसूरत महल था जिसके आगे का हिस्सा समूचा संगमरमर का बना हुआ था। तो कारवाँ के साथ बहुत सा नकद रुपया, अशर्फियाँ, सोना, जवाहरात चल रहा था। चार पहिये वाली गाड़ियों पर कुछ चाँदी भी लदी हुयी थी।

कारवाँ चलता चला जा रहा था। मैदान में चलने के बाद वह पहाड़ियों के ऊपर चढ़ा। मार्ग का कुछ हिस्सा उसने पहाड़ियों पर पार किया। कारवाँ के साथ जितना धन था उसी हिसाब से काफी फौज-फाटा भी रक्षा के लिए चल रहा था। मौलाना अहमद अपने काफी सिपाहियों को लेकर कारवाँ की रक्षा कर रहा था।

पहाड़ियों से उतरते-उतरते कारवाँ को एक दर्रे से होकर गुजरना

था। दर्रे से निकलने ही मैदान पड़ता था और तब बीजापुर जाने वाली सड़क मिलती थी।

कारवाँ के लोग बड़ी मौज़ में बढ़ रहे थे। तलवारें लिवास के साथ बँधी थीं और किर्चें हाथों में झलक रही थीं। उनके लम्बे कुर्तों और ढीली-ढाली सलवारों में जो कसा हुआ शरीर ढका हुआ था उसमें अरब और फ़ारस के मज़बूत पठानों की बहादुरी और खूंख्वार शकलें दिखायी दे रही थीं।

इस समय उस तंग दर्रे से कारवाँ बढ़ रहा था और दर्रे के मुहाने पर साँप लटक रहे थे या बिच्छू डंक मारने वाले थे यह किसको पता था।

दर्रे से मैदान में आने पर शिवाजी के तीन सौ जवानों ने कारवाँ पर हमला कर दिया। कारवाँ देखते-देखते सब तरफ से घिर गया। गाड़ियों की गड़गड़ाहटें थम गयीं और शीघ्र ही समूची बीजापुरी माल-गुजारी पर मराठे सरदारों का कब्ज़ा हो गया। कारवाँ के सिपाही दुम दबाकर किसी प्रकार बीजापुर की ओर भागे। भागने में मौलाना अहमद आगे था।

उधर मराठों का एक दल सुरक्षा सहित समूचे खज़ाने को राजगढ़ के मज़बूत तहखानों में जमा करने चल दिया और दूसरा कल्यान के बन्दरगाह तथा उसके पास भिवण्डी पर कब्जा करने के लिए बढ़ गया।

कल्यान के बाज़ार सूने पड़े थे। दोपहर की गर्मी से बन्दरगाह तप रहा था। मराठों के भारी सैनिक-दल को देखकर कल्यान बस्ती के निवासी भयभीत हुए। भागे। बाजार बन्द हो गये। शिवाजी द्वारा इस काम के लिए भेजे गये पेशवा श्यामराज नीलकंठ ने अपने भाई दादाजी बापूजी के साथ शीघ्र ही कल्यान पर अधिकार स्थापित कर लिया।

अन्त में यह दल कल्यान के सूबेदार मौलाना अहमद के महल की

ओर बढ़ा। सूबेदार की अनुपस्थिति में महल के पहरेदार मराठों का मुकाबला बहुत देर तक नहीं कर पाये और शीघ्र ही महल के फाटक खुल गये।

महल के अन्दर सूबेदार मौलाना अहमद का परिवार तब तक मौजूद था। जब मराठे सरदार कल्यान के सूबेदार के महल में घुसे तो उन्हें एक नायाब चीज़ दिखायी थी। उसको देखकर सरदारों की आँखे चौंधिया गयीं। उसकी ख़ूबसूरती को देखकर मराठा सरदार अबाजी सोनदेव ने चाहा कि एक तोहफे के रूप में वह उसे शिवाजी को पेश करे।

अपने नवजवान मालिक शिवाजी को जो नायाब तोहफा अबाजी ने कल्यान से पूना भेजा उसके लिए मार्ग की सुरक्षा का भी बहुत प्रबन्ध कर दिया और अबाजी की नज़रों का वह तोहफा पूना रवाना हो गया।

× × ×

उधर भिवण्डी वाले दल ने जिसका नेत्रत्व साखो कृष्ण लोखरे कर रहा था—भिवण्डी पर अधिकार जमाया। भिवण्डी ही नहीं माहुली, चौल, तेल, घोसले, राजमची, लोहगढ़, कंगोरी, तुङ्ग-तिकोना आदि क़िलों पर एक के बाद एक जल्दी ही अधिकार कर लिया गया। इस प्रकार उत्तरी कोन्कन का सम्पूर्ण प्रांत मराठों के अधिकार में आ गया।

एक ओर शिवाजी के दल इधर-उधर कार्य कर रहे थे दूसरी ओर शिवाजी कुछ समय के लिए राजनीति बल के स्थान पर छल का उपयोग करने की तरकीब लड़ा रहे थे।

पूना के दो पहरेदारों के रूप में दो किले डटे हुए थे—एक सिंहगढ़ और दूसरा पुरन्दर। सिंहगढ़ पर बहुत पहले ही अधिकार हो चुका था किन्तु पुरन्दर पर होना शेष था। सिंहगढ़ दक्षिण-पश्चिम में और पुरन्दर दक्षिण-पूर्व में था। पुरन्दर को बीजापुरी सल्तनत ने एक

ब्राह्मण देशपांडे नीलो नीलकण्ठ सारनायक के इन्तज़ाम में रक्खा था। बेचारा नीलकंठ सीधा-सादा आदमी था और शिवाजी के पिता शाहजी के परिवार का पड़ोसी व अत्यधिक शुभचिंतक था।

इधर अपनी कार्यवाहियों से शिवाजी समझ रहे थे कि बीजापुरी सुल्तान कभी भी उस पर हमला कर सकता है। बरसात आने को थी। वर्षा में ही आक्रमण का भय विशेष था। अतः शिवाजी ने सारनायक को एक पत्र लिखा जिसमें क़िले के नीचे के टीले पर वर्षा के बचाव के लिए एक सायबान बनाने की अनुमति माँगी। सारनायक ने अनुमति दे दी और शिवाजी ने वहाँ अपना एक अड्डा स्थापित कर लिया।

इसी पुरन्दर के क़िले में सारनायक कुछ विशेष उत्सव मना रहा था। उसी उत्सव में सम्मिलित होने के लिए सारनायक के भाइयों ने शिवाजी को क़िले में बुलाया।

सारनायक के भाइयों से शिवाजी गुप्त गठ-बंधन पहले ही कर चुके थे। उन्होंने भी अपना एक पारिवारिक झगड़ा शिवाजी के सामने रक्खा।

"क़िले में आकर मैं सब ठीक कर दूँगा," शिवाजी ने उत्तर दिया।

अस्तु, अपने कुछ सरदारों को लेकर शिवाजी सारनायक के उत्सव में सम्मिलित होने क़िले में गये। सारनायक ने शिवाजी का बहुत सत्कार किया। शिवाजी दिन भर क़िले में रहे और रात्रि को भी जान-बूझ कर वहीं सोये। रात्रि में शिवाजी के सिपाहियों ने क़िले पर अधिकार स्थापित किया और सारनायक तथा उसके भाइयों को भी पकड़ कर बन्द कर लिया।

तदनन्तर शिवाजी ने सारनायक परिवार का झगड़ा निबटाया और उससे खुला समझौता किया कि अब भविष्य में सारनायक शिवाजी के हेतु क़िले का इन्तज़ाम करेगा। सारनायक तैयार हो गया और जैसा

बाद में भी हुआ पुरन्दर का किला व सारनायक दोनों ही शिवाजी के सदैव सहयोगी रहे।

इस प्रकार बिना रक्तपात के ही इतना भारी किला शिवाजी ने अपने अधिकार में कर लिया।

× × ×

पुरन्दर पर अधिकार करके दूसरे दिन जब शिवा राजे पूना पहुँचे तो रंग-महल के बाहर ही उन्हें सूचना मिली कि कल्यान सहित वहाँ के सभी पड़ोसी स्थान उनके अधिकार में हो गये हैं।

उसी प्रसन्नता में एक मराठा सरदार ने यह भी सूचना दी कि आबाजी सोनदेव ने उनके लिए कल्यान से एक नायाब तोहफा भेजा है।

"कहाँ, क्या ?"—शिवाजी ने प्रश्न किया।

इस पर सरदार उन्हें रंग-महल वाले बाग की ओर ले गया।

बाग में पहुँचते-पहुँचते शिवा राजे ने देखा कि एक स्थान पर एक पालकी रक्खी है। उस पर ज़रदोज़ी के काम की छत व अग़ल-बग़ल के पर्दे पड़े हुये हैं। यह सब सामान लाल मख़मल पर सोने के तार का कढ़ा हुआ था।

शिवाजी ने कड़क कर प्रश्न किया—"यह क्या है ?"

सरदार सकपका गया।

झपटते हुये शिवा राजे ने डोली के पास जाकर डोली के पर्दे को उघाड़ा। शिवाजी देखकर चौंके और पीछे हट गये। फारस की वह अद्वितीय सुन्दरी कल्यान के सूबेदार मौलाना अहमद की भान्जी थी।

वह लड़की भी बहुत चपल थी। शिवाजी के वहाँ पहुँचते ही वह डोली से बाहर निकल आयी। शरबती रंग के रेशमी पायजामे के ऊपर नीले मख़मल की लम्बी कुर्ती—जिसके किनारों, सुगोल बाहों, कन्धों और पीठ पर कामदानी के काम का किनारा और फूल बने हुये थे—वह पहने थी और एक अप्सरा की तरह अचानक बाहर निकल आयी।

उसके सुनहले गुलाबी चेहरे के भरेपन में उभरे प्रवाल से ओठ हिले और वह बोली :

"रास्ते में जैसा मुझे बताया गया था क्या आप ही शिवा राजा हैं ?"

"जी हाँ। मुझे बहुत अफसोस है कि मेरे सरदारों की नादानी की वजह से आपको इतनी तकलीफ उठाकर यहाँ तक सफर करना पड़ा लेकिन यह मेरी ख़ुश-क़िस्मती है कि आप ऐसी सुन्दरी के दर्शन हुये। काश मेरी माँ ऐसे रंग के निखार पर होती तो कम-से-कम मैं इतना बदसूरत न पैदा होता। मुझे माफ कीजियेगा। जाइये। आप को बा-इज़्ज़त ये लोग आपकी फूफी के पास कल्यान पहुंचा देंगे।

शिवाजी ने सरल शब्दों में कहा और दूसरे ही क्षण कड़क कर बोले—"जाओ ले जाओ। बिना किसी तकलीफ और परेशानी के इनको कल्यान के सूबेदार के महल में पहुँचा दो और देखो ! पहुँचाने के बाद उलटे पैरों मुझे ख़बर दो कि बिटिया सही-सलामत घर पहुँच गयी।···जाइये ! डोली में बैठिये"—कहते हुये शिवा राजे घूमकर एक ओर चल दिये।

× × ×

कल्यान जाते हुये रास्ते भर वह नव-जवान लड़की शिवाजी की भलमनसाहत और उनके सुन्दर चेहरे को अपने हृदय में उतारती रही। जैसे शिवाजी के मीठे बोलों और शराफ़त की वह आशिक हो गयी और अपने महल कल्यान पहुँचते-पहुँचते उस इश्क का उस पर पूरा असर हो गया था।

× × ×

लड़ाइयाँ और लूट में मिलने वाले तोहफ़ों के नाम पर मिली लड़कियों और औरतों की बेइज़्ज़ती करने का जो प्रचलन सारी दुनिया के इतिहास में भरा पड़ा है उसको शिवा राजे ने अपने इतिहास से निकाल

कर बाहर फेंक दिया। वह पहला अवसर था जब इस तरह एक लड़की का प्रसंग शिवा राजे के सामने आया था।

उसके बाद शिवा राजे ने आबाजी सोनदेव को एक लम्बी डाँट पिलायी और अपनी समस्त सेना में कड़ाई से हुक्म दिया कि कभी भी कोई सैनिक किसी स्त्री के साथ कोई दुर्व्यवहार न करे अन्यथा उसके साथ भी सख्त कार्यवाही की जायेगी।

यों, कल्यान के सूबेदार मौलाना अहमद की भानजी के साथ तो कोई दुर्व्यवहार हुआ भी नहीं था।

× × ×

बीजापुरी दरबार लगा हुआ था। मोहम्मद आदिलशाह तख़्त पर बैठा था। सभी दरबारी सिजदा की रस्म पूरी करने के बाद अभी-अभी अपनी-अपनी जगहों पर बैठे थे। शिवाजी के दरबार में आने और सिजदा न करने की घटना के बाद से हर दिन सिजदा होते समय आदिलशाह को वह घटना याद आ जाती थी और वह आलपीन-सी चुभती थी।

उधर शिवाजी की हरकतों से बीजापुरी दरबार बेहद गरम व चौकन्ना था। शाहजी को नौकरी से हटाया ही जा चुका था। एक के बाद दूसरी खराब खबरें आती रहती थीं। क़िले जीतना तो जैसे शिवा के बायें हाथ का काम हो गया था। छल से, बल से—किसी भी प्रकार शिवा क़िलों पर अपना क़ब्जा तुरन्त कर लेते थे। इस पर भी आदिलशाह अजीब उलझन में यह था कि ख़बरें तो बताती थीं कि शिवा बहुत गड़बड़ कर रहा है लेकिन जब वह सफाई देता था तो कहता था कहीं कुछ नहीं है। रोहिडा और शिरवल के प्रसंग को लेकर शाह के फरमान का जो उत्तर कन्हो जी जेडे के नाम पर उनके देशपांडे दादाजी नरस प्रभु ने भेजा था वह लगभग वैसा ही था जो शिवा राजे ने उनके पास स्वयं भेजा था जिससे तसवीर कुछ दूसरी ही सामने आती थी।

और अब दूसरा पत्र भी आ चुका था जिसे शिवा राजे ने आदिलशाह

के पास भेजा था जिसमे अपनी सफ़ाई मे उन्होंने अपने आपको बिलकुल निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा की थी।

इस समय आदिलशाह उसी पत्र की चर्चा कर रहा था कि सामने से रोते-कलपते हुये कल्यान के सूबेदार ने दरबार में प्रवेश किया। उसके साथ कुछेक सिपाही भी थे। बाकी दल के लोगों को वह दरबार के बाहर ही छोड़ गया था।

"मैं लुट गया—मैं मिट गया ! मराठे सिपाहियों ने मेरा ख़जाना लूट लिया", वह चीख़ता रहा।

सुनकर बीजापुरी दरबार के दरबारियों की धरती खसक गयी। वह उस प्रकार की पहली घटना थी जो बीजापुरी इतिहास में हुयी थी। उधर कल्यान की एक साल की पूरी मालगुजारी चली गयी यह सुनकर आदिलशाह एकदम परेशान हो गया था। इधर फौजी इन्तज़ाम वगैरह के लिये बीजापुर को रुपये की ज़रूरत भी थी।

आदिलशाह बहुत बिगड़ा। उसका चेहरा तमतमा गया। उसके हाथ में शिवाजी का ही खत था जिसको उसने पलभर में मुट्ठी में भींच कर दबोच दिया।

"यह धोखा ! एक तरफ यह ख़त और दूसरी तरफ़ यह हरकत। ···मूसा खां ! इस बदमाश छोकरे शिवा का माकूल इन्तज़ाम किया जावे। उसके बाप को फौरन दरबार में तलब करो। अभी वह बीजापुर में ही है। उसे पकड़ कर बन्द कर दो और उस पाजी छोकरे को ख़बर भिजवा दो कि अगर उसने सिंहगढ़ का क़िला और कल्यान का ख़जाना न लौटाया तो उसके बाप का सिर क़लम कर दिया जायेगा।"

: २३ :

"सुविक्रान्तस्य नृपतेः सर्वमेव महीतलम्"

"अगर मुझे जीवित देखना चाहते हो तो सिंहगढ़ आदिलशाह के सुपुर्द कर दो।"

शाहजी से आदिलशाह ने लिखा कर शिवा राजे के पास भेज दिया।

पूना में तहलका मच गया। सभी को विशेष चिन्ता ने घेरा। शाहजी का जीवन ख़तरे में देखकर लगा जैसे सिंहगढ़ देना पड़ेगा। तस्वीर ही कुछ बदली नज़र आयी लेकिन शिवा राजे डटे हुये थे कि सिंहगढ़ किसी मूल्य पर नहीं लौटाया जायेगा।

माँ—तड़प कर रह गयी। पति के जीवन का प्रश्न सामने आ गया। पुत्र से कुछ कहे यह इच्छा न होते हुये भी जीजाबाई को शिवा से अनुरोध करना पड़ा। परन्तु शिवा ने माँ की भी न मानी। बात पर जमे रहना भी शिवा का विशेष स्वभाव था।

अन्त में मां ने शिवा को इस बात पर राजी कर लिया कि राजनीति और सुरक्षा के ध्यान में जो उचित होगा; वैसी ही सलाह सोनो पन्त दाबिर देंगे और वे जो बात कहें उसे शिवा मान लें।

"यह भी एक राजनीतिक पासा है। फेंक दीजिये। सिंहगढ़ तो फिर आपको मिलेगा। 'सुविक्रान्तस्य नृपतेः सर्वमेव महीतलम्"—कुछ और

मिलेगा। कर्मवीर को महीतल पर क्या कमी?"

सोनोपन्त की बात शिवा ने स्वीकार कर ली परन्तु कहा—"मुझे कुछ प्रयत्न कर लेने दीजिये तब मैं सिंहगढ़ लौटा दूँगा। आप देखियेगा सांप मर जायेगा और लाठी भी नहीं टूटेगी।"

तत्काल ही शिवा ने मुग़ल सल्तनत का दरवाजा खटखटाने की बात सोची और मध्यभारत के सूबेदार शाहज़ादा मुराद बक्स को उन्होंने पत्र लिखकर अनुरोध किया कि वे बीज़ापुर सुल्तान पर अपना प्रभाव डालकर उनके पिता की मुक्ति का प्रयत्न करें जिसके बदले में वे उनके सहायक व मित्र बनकर उनकी सरहदों की रक्षा करेंगे।

× × ×

शाहजादा मुराद को पत्र लिख कर शिवा राजा एक और क़िलेबंदी पर अधिकार करने की योजना बना रहे थे। सूपा पूना से थोड़ी दूर पर एक स्थान था। उन दिनों उसका देशमुख शम्भा जी मोहित था जो बीजापुर सुल्तान का महान् भक्त था। इसके अतिरिक्त कोढ़ में खाज यह थी कि वह शिवाजी के पिता शाहजी का साला होता था। उसकी बहन तुकाबाई की शादी शाहजी से होने के कारण शिवाजी से उसके सम्बन्ध अच्छे नहीं थे।

चूँकि एक ज़माने से मोहिते बीजापुर सुल्तान का सूबेदार था इस कारण वह शिवाजी के विरुद्ध एक प्रकार से गुप्तचर का काम करता था।

अपने सर पर ही दुश्मन को कौन रक्खेगा? शिवाजी की वह सुनता भी नहीं था। इस कारण शिवाजी ने एक रात शम्भा जी की मरम्मत की। उसका सब माल-असबाब छीन लिया और उसे बाँधकर उसकी बहन के पास बंगलौर भेज दिया।

जब इसकी सूचना बीजापुर पहुँची तो आदिलशाह और गरम हुआ।

अब सिहगढ़, रोहिडा, कल्यान, पुरन्दर और सूपा—ये पाँच स्थान और कल्यान की मालगुजारी इतनी चीज़ें शिवाजी के विरुद्ध बीजापुर

दरबार में इकट्ठा हो गयीं जिनसे शिवाजी बीजापुर दरबार में खुले विद्रोही घोषित किये जाने की स्थिति में पहुँच गये ।

इन्हीं दिनों एक ओर स्वयं आदिलशाह बीमार पड़ा और दूसरी ओर दादाजी कोणदेव ने अपनी यह संसारी लीला समाप्त की ।

शिवाजी का एक बड़ा सहारा समाप्त हो गया । दादाजी की मृत्यु का पूना में बहुत शोक मनाया गया ।

कई दिन तक शिवाजी महल के बाहर ही नहीं निकले ।

एक दुःख दूसरे घाव भी ताज़े कर देता है । उस शोक में ही शिवा राजा को अपने पिता का बहुत ध्यान आया और उन्होंने उन्हें मुक्त कराने के लिये शीघ्र चेष्टा करने का निर्णय किया ।

× × ×

"हुज़ूरे आला ! मुग़ल दरबार से शाहजी के नाम फरमान आया है"—वज़ीर ने आदिलशाह से कहा ।

"पढ़ो, क्या लिखा है ?"

मराठों के सरमौर शाहजी राजे के लिये शाहे हिन्दोस्तान मुग़ले-शाह शाहजहाँ की तरफ से फरमान :

परेशान मत होइये । जनाबे आला के लिये बतौर दोस्ताना शाही पोशाक भेजी जाती है । जनाब से हुज़ूर में हाजिर होने की दरख्वास्त की जाती है । शाही दरबार में आला ओहदा पेश किया जाता है ।

बमोहर मुग़ले शहंशाहे वक्त
हुज़ूरे जलाल शाहजहाँ शाह

आदिलशाह हैरान था । मुग़ल दरबार से शाही पोशाक आयी है । शाहजी को शाहजहाँ ने बुलाया है । यही नहीं सबसे बुरी बात शाही दरबार में आला ओहदा दिया गया है । उफ़···

"वजीरे मूसा ! इस फरमान का पता शाहजी को नहीं होना चाहिये । ऐसा इंतज़ाम हो"—बीजापुरी सुल्तान ने अपने दिल की बात खोल दी ।

"ऐसा मुमकिन नहीं है हुज़ूर ! क्या मुग़ल सल्तनत से लड़ाई ठानना चाहते हैं। इस फरमान की सब तरफ ख़बर हो चुकी होगी। इस फरमान को जारी कराने में ज़रूर कोई हाथ होगा।..."

"तब ?"

,'शाहजी को छोड़ना होगा। मुग़ल दरबार से एक बार फरमान निकल जाने के बाद अब शाहजी उस दरबार के ओहदेदार क़रार हो चुके। अब उन्हें जेल में बन्द नहीं किया जा सकता...."—वज़ीर ने समझदारी की सलाह दे दी।

"क्या जहालत है ? एक तरफ यह परेशानी और दूसरी तरफ वे बेहूदा ख़बरें। उस नामाकूल ने पुरन्दर और सूपा भी हथिया लिये। लेकिन एक खुश-ख़बरी भी है, वह पाजी कोणदेव दम तोड़ गया।... लेकिन कुछ भी हो जाये जब तक मुझे सिंहगढ़ और कल्यान का ख़जाना नहीं मिल जाता मैं शाहजी को हर्गिज नही छोड़ूंगा।...मुग़ल शाह मेरा क्या बिगाड़ लेगा....", बहुत तैश में आदिल शाह ने कहा।

परन्तु बीजापुर के मामलों में यकायक मुग़लशाह की दिलचस्पी देखकर आदिलशाह कुछ बेचैन हुआ। अगर शाहजी मुग़लशाह के दरबार में पहुँच गया तो अपनी बेइज़्ज़ती के बदले में कुछ ऊधम ज़रूर उठावेगा। दूसरे उसके लड़के शिवाजी ने अगर दिल्ली शाह से कोई समझौता कर लिया है तब भी गड़बड़ है। तब फिर ?

आदिलशाह ने शाहजी को छोड़ने का हुक्म दे दिया।

× × ×

जब पूना यह ख़बर पहुँची कि शाहजी को बीजापुरी सुल्तान ने छोड़ दिया है तो सब तरफ खुशियाँ मनाई गयीं।

इन खुशियों के बीच भी शिवा राजे के चेहरे पर उदासी की हल्की रेखा खिंची दिखायी देती थी। एक विशेष चिन्ता उत्पन्न होगयी थी। परिस्थिति विचित्र थी। शिवा राजे सोच रहे थे कि यदि उन्होंने वह वचन पूरे कर दिये जो उन्होंने मुग़ल शाह के यहाँ भिजवाये थे तो उसका अर्थ

होगा कि स्वराज्य की कल्पना अथवा उसकी ओर इतना सब प्रयत्न जो अब तक किया गया है स्वयं ही समाप्त कर देना क्योंकि किसी की भी ग़ुलामी खरीदना कैसा ? दूसरे वे यह भी चाहते थे कि मुग़लों से समझौता करने की धमकियाँ आदिलशाह को तो बराबर देते रहो जिस से वह शाहजी के साथ फिर दुर्व्यवहार करने का साहस न कर सके क्योंकि मुग़ल दरबार में चले जाने की इजाजत शाहजी को आदिलशाह भी नहीं दे रहा था। मुग़लों से उसे अपने लिये भारी ख़तरे थे। यही कारण था कि मीठी-कड़वी खुशामद करके न आदिलशाह ने शाहजी को ही अपने दरबार से जाने दिया न उस डर के कारण शिवाजी के विरुद्ध ही कोई कार्यवाही की।

इस प्रकार शिवा राजा की वह राजनीति तो काम कर गयी। अब प्रश्न रह गया मुग़लशाह से वचन-पूर्ति का। उसके लिये शिवा राजा समय-समय पर चापलूसी भरे पत्र दिल्ली भेजते रहते थे जिससे दरबार का ध्यान बँटा रहे।

इन्हीं दिनों कुछ विशेष घटनायें घटी। शाहजादा औरङ्गजेब को दक्षिण का गवर्नर नियुक्त किया गया। औरङ्गजेब की नियुक्ति के बाद ही बीजापुरी सुल्तान आदिलशाह का लम्बी बीमारी के बाद देहान्त हो गया। मोहम्मद आदिलशाह की मौत के बाद बीजापुर की सल्तनत बहुत ढीली पड़ गयी क्योंकि एक स्त्री के हाथ में सल्तनत की बागडोर आ गयी। बड़ी साहिबा ने बीजापुर की सल्तनत बालक अली के नाम पर चलाना शुरू की।

इस परिस्थिति का लाभ उठाने के लिये दक्खिन के सूबेदार शाहजादा औरङ्गजेब ने अपने क़दम बढ़ाये और बीजापुर पर हमला करने के मंसूबे बाँधने शुरू कर दिये।

औरङ्गजेब के उन इरादों की सूचना पाकर शिवा राजा ने भी उधर पेंगे लेना प्रारम्भ कर दीं और इन मामलों का हल निकालने के लिये सोनोपन्त दाबिर को औरङ्गजेब से भेंट करने औरङ्गाबाद भेजा।

शिवाजी का प्रस्ताव था कि अगर कोन्कन के क़िले पूर्ववत् अपने अधिकार में बनाये रखने का विश्वास मराठे पा लेंगे तो बीजापुर के आक्रमण में शिवाजी औरङ्गजेब का साथ देंगे। औरङ्गजेब ने मराठों की दोस्ती के बढ़े हाथ को थामना चाहा और सोनोपन्त सूबेदार की स्वीकृति लिये हुये प्रसन्नतापूर्वक पूना लौटा।

उधर कोन्कन प्रान्त के प्रबन्ध की भागदौड़ के सिलसिले में शिवा राजा ने जुनार पर भी हाथ साफ किया। जुनार और अहमदनगर उन दिनों मुग़लों के अधिकार में था। अस्तु, अपनी जन्मभूमि जुनार की लूटपाट में शिवा राजे को सोना, जवाहरात और बहुत से घोड़े मिले।

इसके साथ ही जो हमला अहमदनगर के फाटक तक हुआ और अहमदनगर की फौजों ने शहर को बचा लिया तो औरङ्गजेब चौकन्ना हो गया और उसने शिवाजी से उस हरकत की शिकायत की।

इस बात की सफाई के लिये शिवाजी ने कृष्णजी भास्कर को दूत बना कर भेजा।

दैवात्, जिस समय कृष्णजी भास्कर औरङ्गजेब के यहाँ पहुँचा उसी समय एक हरकारे ने सूचना दी कि शाहजहाँ सख्त बीमार है।

तख्ते शहंशाही के मोह में औरङ्गजेब जो कुछ भी फौज जल्दी में इकट्ठी कर पाया उसे लेकर उसने उत्तर की ओर कूच किया और दक्षिण में साइस्ता खां को सूबेदार बना कर छोड़ गया। जाते-जाते शिवाजी पर ख़ास निगाह रखने की उसने ताक़ीद की।

इन्हीं दिनों कुदाल नामक एक स्थान पर शिवाजी ने तीन सौ हून में एक बहुत बढ़िया तलवार ख़रीदी जिसका नाम उन्होंने भवानी रक्खा और बाद में बहुतेरी लड़ाइयों में उससे काम लिया। यही कुछ दिनों बाद अफजल खाँ के मारने के काम में भी आई।

× × ×

एक दिन शाहजी राजे एकान्त में बैठे वर्तमान परिस्थितियों का

मनन कर रहे थे। अपनी स्थिति को आँक कर दुःखित हो रहे थे किन्तु यह सोच-सोच कर प्रसन्न भी हो रहे थे कि उनका एक लड़का शिवा ऐसा है जो उनको ही नहीं समूची मराठा जाति को गौरवान्वित करेगा। इधर अपनी मुक्ति और सिंहगढ़ की स्थिति यथावत् देखकर जो सन्तोष उन्हें हुआ था वह और बढ़ गया जब उन्हें सूचना मिली कि समूचा कोन्कन प्रान्त शिवा का हो गया है।

तभी उन्हें एक फरमान मिला जिसमें लिखा था :

"सुल्तान ने अच्छी तरह समझ लिया है कि तुम्हारा लड़का तुम्हारे कहने में नहीं है न ही तुम उसकी कार्यवाहियों के जिम्मेदार ठहराये जा सकते हो। इसलिये तुम्हारी जांफिसानी और दोस्ताना हरक़तों से खुश होकर सुल्तान फिर से तुम्हें बंगलौर का सूबेदार बनाकर वहाँ की जागीर तुम्हें सौंपते हैं। तुम अपने ओहदों पर उसी तरह बरकरार किये जाते हो जिस तरह अब तक थे। बंगलौर की रक्षा अब तुम्हारे ताल्लुक़ है।

—बदस्तख़त वज़ीरे आजम
सल्तनते बीजापुर।

और शाहजी ने बंगलौर की ओर प्रस्थान किया।

बंगलौर जाते-जाते उन्होंने सोचा कि वे पूना के हाल-चाल लेते हुये बंगलौर जायें परन्तु उन्हें मार्ग में ही सूचना मिल गयी कि शिवा पूना में न होकर समुद्री किनारे की हवा खा रहे हैं।

शाहजी रास्ते से ही सीधे बंगलौर की तरफ मुड़ गये।

उधर शिवा राजे कल्यान के बन्दरगाह पर खड़े होकर समुद्र की चमकती धूप का आनन्द ले रहे थे। समुद्र की उछलती लहरों पर सुनहले सूरज की जो धारियाँ आड़ी-सीधी पड़ी हुयीं थीं वे बूदों की लपक-झपक में बड़ी सुहानी लग रही थीं।

शिवाजी समुद्र के किनारे खड़े थे। उनके साथ बहुत से वज़ीर व सिपहसालार थे। एक ओर मछुओं का भारी दल खड़ा था और दूसरी

ग्रोर उस नाविक सेना के सैनिक जो ग्राज के शुभ मुहुर्त में शिवा राजा के जंगी बेड़े के लिये समुद्र में उतारे जाने को थे।

इस समूचे दल की नजरें दूर समुद्र में टिकी हुयी थीं। समुद्र की सतह के ऊपर कई काले-काले से गोले या धारियाँ या खड़े हुये खम्भे से दिखायी दे रहे थे जो धीरे-धीरे किनारे की ग्रोर ही सरक रहे थे।

कुछ लोग कह रहे थे—"वे समुद्री चिड़ियों जैसे दिखायी देते हैं।" किसी ने कहा—"वे तो बरगद के भारी पेड़ है जो ग्रपनी लटकती शाखों के साथ पानी में डोल रहे है।" किसी ने कहा—"ओः! ये तो झूमते हाथी हैं।" परन्तु ग्रन्त में लोगों ने कहा—"ग्ररे: ! ये तो बेड़े के जहाज हैं जिनके रंग पीले ग्रौर मस्तूल भूरे है जिन पर लहराते दूधिया कपड़ों के तिकोने-चौकोर टुकड़े बेजान होते हुये भी जहाजों में वह जान भरते हैं जिनसे वे ग्रपनी दम खींच कर ग्रागे बढ़ सकें।

और तब उमंगों में भरे मराठे, ताक़त के भरे मल्लाह और खुशियों में डूबे मछुये उन जहाजों पर चढ़ गये। सब मिलाकर, छोटे-बड़े वे इक्कीस थे जो लम्बी दौड़ लगाकर ग्रभी खड़े हुये थे।

उनमें सबसे बड़ा और सबका मुखिया था जल-मारुति। जल-मारुति ग्रागे बढ़ा। किनारे लगा ग्रौर मुहुर्त की बेला में शिवा ग्रपने वज़ीरों, पेशवाग्रों के साथ उस पर चढ़ गये।

जहाजी बेड़ा चल दिया।

दिन भर बेड़े की घुमाइयाँ होती रहीं ग्रौर तब शाम को वापसी पर उस बन्दरगाह का नाम विजय-दुर्ग रक्खा गया।

: २४ :

अपनी उस भारी जागीर अथवा छोटे मराठा राज्य की तिकोनी सरहदें व्यवस्थित कर शिवाजी ने कुछ क्षणों को ख़ामोशी की सांस ली। सरहद में एक किनारा समुद्र का था जिसको मजबूत जहाजी बेड़ा सँभाले हुए था। दूसरी धारी बीजापुरी सल्तनत के बराबर-बराबर खिंची हुयी थी और तीसरी मुगल शहंशाही के साथ जुड़ कर बढ़ती थी।

यह सब किसको सह्य था ? विशेषतः उस समय देश में स्थापित कोई भी विदेशी सत्ता तो वह सहन ही नहीं कर सकती थी। यही कारण था कि जिन दिनों शिवा का सितारा इतनी तेज़ी से चमक रहा था उन्हीं दिनों सब ओर से उन्हें समाप्त करने के प्रबन्ध हो रहे थे।

छल-बल जैसे भी हो शिवा को दाबा जाये। इसके लिये बीजापुरी दरबार विशेष तत्पर था। जब शिवाजी के विरुद्ध राजनीति और कूट-नीति असफल हो गयी तो वहाँ नारी की छल-प्रपंच नीति प्रारम्भ हुयी। बड़ी साहिबा अथवा बीजापुरी मलका अब तुल गयी थी कि शिवाजी को किसी भी तरह ख़त्म किया जाये। स्त्री की बुद्धि विशेषतः प्रपंच की ओर अग्रसर होती है इसी कारण बड़ी साहिबा ने एक दिन कनक-

गिरि के मनसबदार अफजलखाँ को दरबार में एक ज़रूरी काम के लिये तलब किया।

बड़ी साहिबा के सामने पेश होते ही उसने एक लम्बी सिजदा की और बोला :

"हुज़ूरे आलिया को सलाम अर्ज़ है ! कैसे तलब किया, हुज़ूर ने !"

"अफजल खां ! शिवाजी की बाबत तो कुछ कहना नहीं है। वह सब कुछ तुम जानते हो। इससे बीजापुर दरबार की परेशानी भी तुमको अच्छी तरह मालूम है। सियासती उलझनें कुछ ऐसी हैं कि खुलासा तौर पर शिवाजी के ख़िलाफ़ कोई जेहाद भी नहीं किया जा सकता है। मुग़लों ने अलग तोबा बुला रक्खी है। हर वक्त हमले का डर बना रहता है।···और इन मरहठों की मुग़लों से खुली साजिश दिखायी देती है। मजबूरी तो देखिये। आख़िर शाहजी को बँगलौर लौटाना ही पड़ा···"

"बेकार ! आप लोग भी तो समझती नहीं हैं। मुझे ही बँगलौर भेज देतीं। वहाँ कनकगिरी—एक छोटी सी जगह में मुझे डाल रक्खा है"—अफज़ल खां ने टोक कर कहा।

"मैंने क्यों तुम्हें कनकगिरी भेजा। कनकगिरी भेजा होगा तुम्हारे सुल्तान ने। अब उन पिछली बातों की क्या शिकायतें हैं।··· मैं तुम्हें ही बंगलौर भेजती। ज़रूर भेजती, लेकिन उस मुये शाहजी को भी फिलहाल खुश करना था।······अब तुम लोगों का बहुत सहारा है। तुम्हीं लोगों से हौसला बढ़ा रहता है। किसी तरह इस अली को उम्र तक पहुँचा दो, बस"—कहते-कहते बड़ी साहिबा की आँखों में आँसू छलछला आये जैसे उन्हें स्वर्गीय सुल्तान की याद ने घेर लिया। और फिर औरतों का क्या ? ये मिल्कियत करते हुये, शाही तख़्त पर बैठ कर हुकूमत चलाते हुये भी ओठों पर तीर सी मुस्कान या आँखों में आँसुओं की छलछलाहट का दबदबा हर वक्त साथ रखती हैं। वे ही धारदार अस्त्र हैं जिनसे ये अपनी बात का प्रभाव पूरा उतारती

हैं। और किसी स्त्री के आँसू बहुत कम लोग सह पाते हैं। बड़े पत्थर जी वाले भी दहल जाते हैं।

मशहूर था कि अफजल खाँ एक खूंख्वार और तेजदम सिपहसालार है। जो सोचता है कर दिखाता है। उसे ऊट-पटाँग काम करने में ही मज़ा आता है।

यह सही था कि अफजल खां के बीजापुर सुल्तान से घरेलू सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। यों वह सुल्तान की ही औलाद थी। उसकी माँ सुल्तान के दरबार में खाना पकाने का काम करती थी। लेकिन अफजल को आदिलाशह ने कभी गौर से नहीं देखा। वह योंही कूड़े के ढेर में पड़ा रहा। हाँ, छोटी-मोटी ओहदेदारी, मनसबदारी या सूबेदारी मिलती रही। वह भी अफसोस इस में ही खुश रहता था।

शिवाजी से थोड़ा यह भी ख़फा था। उसे बाई की सूबेदारी और उसके बाद कनकगिरी की मनसबदारी मिली थी। वहाँ उन दिनों शिवा राजा और मोरे लोगों से झंझट चल रहे थे। बीजापुर रियासत के खुफिया इशारों पर अफज़ल खाँ मोरों को उकसा रहा था लेकिन शिवा-राजे ने मोरों की मिल्कियत छीन ली थी। उनके हाथ के क़िले छीन लिये। वे मौत के घाट उतार दिये गये। शिवा राजे की मोरों पर जीत बहुतों को पसन्द नहीं आयी उन्हीं में एक अफज़ल खां भी था। अस्तु, बड़ी साहिबा की आँसुओं में डूबी आवाज़ से तरबतर अफज़ल खाँ ने धीमे से पूछा :

"तब करना क्या है ?"

"तुम्हें भी कुछ बताना है ? लड़ाई से या छल से इसका निबटारा कर देना है।"

अफज़ल खां एक मिनट को ख़ामोश बैठा रहा और कुछ सोचता रहा। तब अनायास उसके मुँह से आवाज़ निकली :

"हूं······। अच्छा। तो मैं जाता हूं।"

"हाँ", बड़ी साहिबा ने भी अपनी स्वीकृति दे दी और योजना

बनना प्रारम्भ हो गयी ।

उन दिनों शिवाजी जावली को जीत कर वाई के निकटवर्ती भाग में अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने में लगे हुये थे। उन्होंने वहाँ प्रतापगढ़ का निर्माण कराया जो इस समय उनका मुख्य निवास-स्थान बना हुआ था। यहीं उनकी अधिक व्यक्तिगत सामग्री और कोष इकट्ठा था ।

उधर बारह हजार सिपाहियों को लेकर अफज़ल खां वाई के लिये चल दिया । चूँकि वाई का वह गवर्नर रह चुका था इस कारण उस प्रदेश के सम्बन्ध में उसे अच्छी जानकारी थी। अफज़ल खां पण्डरपुर, महादेव पर्वत तथा मलादी के मार्ग से होता हुआ रहीमपुर पहुँचा । मार्ग में अपना आतंक स्थापित करने के इरादे से उसने बहुत अत्याचार किये। शिवाजी से द्वेष मानने के कारण उसने तुलजापुर और पण्डरपुर के मन्दिरों को लूटा, मूर्तियों को तोड़ा।

शिवाजी भी राजगढ़ से अफज़ल खां की गतिविधि को बारीकी से देख रहे थे। वाई एवं जावली के बीच के स्थानों पर ही शिवाजी ने अफज़ल खां से मोर्चा लेने का निर्णय किया। उन्हें अब तक ज्ञात भी हो गया था कि अफज़ल खा का लक्ष्य उसी ओर है ।

वाई और जावली के बीच का स्थान ऊँची-नीची पहाड़ियों और ऐसी गहरी घाटियों से घिरा था कि उस स्थान पर शत्रु का पैठ पाना आसान नहीं था। दूर-दूर तक खेतों में जंगली जानवर हुंकारते थे और वहाँ इतने घने वृक्ष थे कि कहीं-कही सूर्य के प्रकाश का पहुँचना भी कठिन था। धरती का वह हिस्सा देखने में ही डरावना लगता था ऊपर से युद्ध ऐसे डरावने कार्य की प्रतीक्षा करना वहाँ और अधिक भयानक प्रतीत होता था।

वहीं महाबलेश्वर के पश्चिम में पारघाट के पहाड़ी दर्रे के ऊपर प्रतापगढ़ में शिवाराजा ने अपनी माँ के साथ निवास बनाया।

जब अफज़ल खां को पता चला कि शिवाजी प्रतापगढ़ में आ गये हैं तो वह सीधा उसी ओर बढ़ा। शिवाजी के विरुद्ध जहाँ उसने अपना

कैम्प लगाया वह पठारी स्थान वाई के निकट शिवाजी के यहाँ से सोलह मील दूर था। बीच में महाबलेश्वर का ऊँचा-नीचा इलाका दिखायी पड़ता था।

पूना में बेहद बेचैनी थी। लोग युद्ध के बादलों को देखकर आतंकित हो रहे थे और उत्साहित भी।

सेनायें तैयार थीं।

मराठे सैनिक कमर कसे रणभेरी के आह्वान की प्रतीक्षा कर रहे थे। पहली बार मुक़ाबले का मोर्चा लगता देखकर शिवाजी की उमंग का भी ठिकाना नहीं था।

जीजाबाई अलग ही भय मिश्रित उत्साह में डूब उतरा रही थीं। पुत्र की परीक्षा का समय था। पहली बार मराठे बीजापुर से शिवा-राजा की छत्रच्छाया में भिड़ रहे थे।

उधर अफज़ल खाँ की हालत बहुत ख़राब थी। उसने उस इलाके में इतनी उद्दण्डतायें कर रक्खी थी कि आसपास के लोग उससे अत्य-धिक नाराज़ हो रहे थे और तभी लोगों ने खां की फौज़ की रसद और दाना-पानी की तबाही बुला दी थी।

यह असम्भव था कि एक ओर लूट-पाट चलती रहे, धार्मिक स्थान नष्ट हों, जनता का अपमान हो और दूसरी ओर जनता उस व्यक्ति विशेष को कोई सहयोग भी दे परन्तु अफज़ल खां को उस समय आस-पास के प्रान्त की जनता से सहयोग की आवश्यकता थी। उसे उस प्रकार अनिश्चित स्थिति में पड़े-पड़े काफी समय हो चुका था।

धीरे-धीरे दोनों दल सामने हो गये।

एक का मुँह वाई के पूर्व की ओर था और दूसरे का प्रतापगढ़ के पश्चिम की ओर।

प्रतापगढ़ का क़िला पहाड़ी चोटी के बहुत तंग स्थान पर बना हुआ था जहाँ तक पहुँचना बहुत मुश्किल था। यही नहीं जिस प्रकार की खुली मैदानी लड़ाई की तैयारी खां की ओर से थी उसके लिये वह

जगह बिलकुल बेकार थी। बेकार क्या वहाँ युद्ध होना तो असम्भव था। फिर अफज़ल खां अपनी इतनी बड़ी फौज को वहाँ चढ़ाकर भी नहीं ले जा सकता था।

अतः अफज़ल खां की दशा संगीन थी।

उधर शिवाराजा ऊँची चोटी पर बैठे मौज की वंशी बजा रहे थे। उन्हें तो कोई चिन्ता थी नहीं। न ही उन्हें कुछ करना था। वे तो अपनी गिद्ध की सी दृष्टि लगाये ऊपर डटे थे कि कब उनका शिकार हाथ पड़े और कब वे उसे पंजों से दबोचें।

उधर खाँ इस तिकड़म में था कि किस तरह शिवा राजा बाहर निकलें।

कुछ ऐसा वातावरण तैयार हो रहा था कि शिवाराजा और अफ़ज़ल खां व्यक्तिगत रूप से मिलें और बात करें।

प्रश्न हो रहा था कि समझौते की वार्ता चले कैसे? अथवा मध्यस्थता कौन करे? चूँकि शिवाजी बचाव की स्थिति अपनाये हुये थे अतः बेचैनी अफ़ज़ल खां को ही अधिक थी कि वह किसी प्रकार बात शुरू कराये। अब लड़ाई नही दोस्ती का ढोंग बनाकर अफज़ल खां अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता था। उधर अफज़ल खां दिन-रात इसी उधेड़-बुन में अपना दिमाग लड़ा रहा था कि कोई आदमी ऐसा ढूँढ़ा जाये जो शिवाजी को उसकी ओर से समझाये कि वह उनका बहुत शुभचिंतक है। उसकी और उनके पिता शाहजी की बीजापुर दरबार से दोस्ती चली आ रही है। यह कि अफ़ज़ल खां शिवाजी व उनके परिवार को बहुत सम्मान की दृष्टि से देखता है।

और अन्त में अफ़ज़ल खां एक आदमी ढूँढ़ लाया। वह था वाई का कुलकर्णी कृष्ण जी भास्कर। यह कुलकर्णी बीजापुरी सल्तनत का बहुत समय से भक्त था। वास्तव में अफज़ल खां चाहता भी ऐसा व्यक्ति था जो शिवाजी पर प्रभाव डाल सके और उस पर वह भी विश्वास कर सके।

अन्त में अफज़ल खां के सरदार कुलकर्णी कृष्ण जी भास्कर को अफज़ल खां के कैम्प में ले आये।

अफज़ल ख़ां उस समय एक तंबू में बैठा दिमाग़ पर जोर दे रहा था क्योंकि उस समय तो हर मिनट शिवा की मौत के दृश्य देखने में ही अफज़ल का दिमाग़ चल रहा था। तभी दो सिपहसालार कुलकर्णी कृष्ण जी भास्कर को लेकर कैम्प में घुसे।

बीजापुर दरबार से ही दोनों एक दूसरे को जानते थे अतः कुलकर्णी ने एक लम्बी सलाम ठोकी। अफज़ल खां अपने तख्त से उठ खड़ा हुआ और आगे बढ़कर तथा दोनों हाथ फैलाते हुये उससे चिपट गया, बेचारा हलका-फुलका कुलकर्णी उन शैतानी हाथों की दाब से पिस कर रह गया। अन्ततः, दोनों ने अपने आसन ग्रहण किये और अफज़ल खाँ ने कहना शुरू किया :

"कुलकर्णी ! तुम्हें यहाँ बुलाने का कारण तो तुम जानते ही हो। मैं सचमुच शिवाजी से लड़ना नहीं समझौता करना चाहता हूं। मैं शाहजी का बहुत ज़माने से दोस्त हूं। उनके पूरे खान्दान की मैं इज़्ज़त करता हूं। मैं तुम्हारे ऐसे आदमी की बहुत बेताबी से तलाश में था कि वह मेरी तरफ से जाकर शिवाजी से कहे कि मैं उनसे मिलना चाहता हूं। दोस्ताना बात करना चाहता हूं। अगर बात बैठ गयी और उन्होंने चाहा तो दरबार में उन्हें उनके पिता की तरह बड़ा पद और फतवा मिल जायेगा। और शिवाजी की अपनी उम्मीदों या ख्वाहिशों को जहाँ तक पूरा करने की बात है वे तमाम मसले मैं दरबार में तय करा दूँगा।"

"और क्या ? झगड़ा किस बात का ? ऐसा तो होना ही चाहिये। आप स्वयं समर्थ हैं। दरबार में सब ठीक करा दीजिये", कुलकर्णी ने हाथ जोड़ कर अफज़ल खां की वन्दना करते हुये कहा।

अफज़ल खाँ की बाछें खिल गयीं और उसने कुलकर्णी से कहा :

"तो फौरन प्रतापगढ़ जाइये।......मोहिउद्दीन ! मोहिउद्दीन !

एक घोड़ा फौरन तैयार करो !……और देखो ! कुछ मिठाई और… और मेवा……हाँ-हाँ ! फौरन नाश्ता पेश करो !"—अफज़ल खां ने बहुत जोश और ख़ुशी में चिल्लाते हुये कहा।

अब क्या था ? अफज़ल खां को लगा कि अब कुलकर्णी गया और अब शिवाजी उसके कैम्प में आया। और उसने उन्हें जंज़ीर में बँधवाया। और शिवाजी जंज़ीरों में कसा अब बीजापुर पहुँचा।…… और वे सैकड़ों लड़के इकट्ठा हैं जो उस पर ढेले उछाल रहे हैं। या इसकी भी क्या ज़रूरत है। तलवार का एक हाथ काफी है। दो टुकड़े होकर हमेशा के लिये झगड़ा ही तमाम हो जायेगा। तब बीजापुर की वज़ारत कहाँ गयी है ! वह रक्खी है, सामने।

और कृष्णाजी ने बहुत खूबी तथा स्वामिभक्ति से अपना काम पूरा किया। उसे कुछ शक भी नहीं था। उसने जो कुछ सुना-समझा था वह ज्यों का त्यों शिवाजी के सामने जा उड़ेला। परन्तु शिवाजी अफज़ल खां की तरह बेवकूफ नहीं थे। उन्होंने उस धोखे की चटाई के छेदों के पार झाँक लिया परन्तु कोई उतावली नहीं दिखाई। बड़ी ग़रीबी से उन्होंने अपनी ग़लतियाँ मान लीं और कहा कि वे तो स्वयं चाहते हैं कि किसी प्रकार उन झंझटों से छुटकारा पा जायें। लेकिन यों अफज़ल खां के कैम्प जाने में उन्हें डर लगता है इसलिये खां के कैम्प में कैसे जायें ?

अन्दर-ही-अन्दर शिवाजी समझते थे कि जल्दबाजी की कोई बात नहीं है। बातचीत में समय निकाल कर खीर को ठंडा किया जाये तब खाया जाये और ठीक से खाया जाये। अच्छी जगह खाया जाये।

अस्तु, शिवाजी ने कृष्णा जी भास्कर की खूब ख़ातिर की। बहुत देर तक बात-चीत की। हर तरह से टटोला। हिलाया-डुलाया। ब्राह्मण धर्म की सच्चाई उसे समझायी। झूठ बोलने के पाप से डराया लेकिन कुलकर्णी ने हर तरह से अपने मालिक की ईमानदारी सिद्ध करने की चेष्टा की।

बात तय हो गयी। कुलकर्णी को चलते-चलते समझा दिया गया कि वह खां को हर तरह से तसल्ली दे दे कि वे इतने बड़े दुश्मन से बिलकुल नहीं लड़ सकते।

कुलकर्णी अफज़ल खा के कैम्प लौट आया। उनके साथ शिवाजी ने अपना एक देशमुख पन्ताजी गोपीनाथ को भेजा। पन्ता जी ने सब बातें समझायीं और कहा कि जब दो बड़े इस प्रकार मिल सकते हैं तो खुले दिल से मिलें। बिना फौज के मिलें। बिना हथियार के मिलें। और बेधड़क होकर प्रतापगढ़ में मिलें जहाँ कोई सैनिक कार्यवाही संभव भी नहीं है।

अफज़ल खां मन में समझ गया कि बिना फौजी कार्यवाही के शिवाजी घेरे में आ सकता है। इसके अतिरिक्त खाँ को अपनी शारीरिक शक्ति पर भी बड़ा भरोसा था।

शिवाजी तो बहुत तेज़ बुद्धि रखते थे। उन्होंने अफज़ल खां के कैम्प में अपने आदमी छोड़ दिये जो पल-पल की ख़बरें लाने लगे। छिपकर भागने की सब जगहों पर अपने चुने हुए जवान तैनात कर दिये कि अफज़ल निकल कर न जा सके। यदि हमले से बचना चाहे तो उसे पकड़ा जाये।

मिलने के लिये शिवाजी ने ही जगह तय की जो ख़ास महत्व की थी। अपने मेहमान की पूरी ख़ातिर का इन्तज़ाम किया। यह जगह सब ओर झाड़ियों से घिरी हुयी थी। इस जगह को देखने के लिये खां के आदमी बहुत बार आये-गये और समझ गये कि सब मामला ठीक है। उस स्थान पर जाने-आने के लिये सब पगडंडियों में झाड़-झँखड़ लगा दिये गये और केवल एक गुप्त रास्ता रक्खा गया जो सीधा पारघाट को जाता था। खां को संदेह की कोई बात नहीं दिखायी दी।

खां पूरी तरह अस्त्र-शस्त्र से लैस होकर और तब भी पन्द्रह सौ जवानों को अंगरक्षक के रूप में लेकर आना चाहता था। आने के लिये बढ़िया पालकी का इन्तजाम किया गया था। परन्तु पहाड़ की चोटी

पर ये पन्द्रह सौ आदमी भी नहीं आ सकते थे इसलिये छितरे-छितरे बिखर गये और उस जगह पर निगाह रक्खे रहे।

तब इस ध्यान से कि शिवाजी डर जाये और न आये इसलिये केवल दो आदमी साथ लाने की बात रह गयी। ये दो आदमी हथियार बन्द रहेंगे। परन्तु यह भी अफजल खां की अपेक्षा शिवाजी के लिये अधिक खतरे की बात थी क्योंकि अफज़ल खां बहुत चालाक और शिवा राजे से बीस साल उम्र में बड़ा था।

शिवाजी को किसी भी नौकर को लाने की इजाज़त नहीं थी और खास तौर पर तम्बू के अन्दर उन्हें कोई हथियार लाने का तो प्रश्न ही नहीं था।

इस तरह की भेंट का इन्तजाम किया गया शिवा राजा और अफज़ल खां के बीच। केवल दो ब्राह्मण राजदूतों को जाने की इजाजत थी—खां की ओर से कृष्णाजी और शिवाजी की ओर से पन्ताजी पन्त।

: २५ :

प्रतापगढ़ का क़िला दूर-बहुत दूर से चमक रहा था। उसकी चहार दीवारी नागिन की तरह बल खाती हुयी चारों ओर घूम कर उस पहाड़ पर जैसे कुंडली बना कर बैठ गयी थी। इसी फसील के नीचे पहाड़ से उतर कर जो कुछ फैलाव की जगह थी वहीं लकड़ी पर खुदाई करके एक खूबसूरत पर्णकुटी सी बनायी गयी। यह तम्बू की तरह की छायादार कुटिया सूने में डूबी भविष्य की एक बड़ी कहानी पूरी करने में लीन थी।

इसी पर्णकुटी में वे दो—शिवाजी और खाँ मिलने को थे। एक दूसरे को नमस्कार, सलाम या आदाब-अर्ज करने को थे।

पहले ही सब इन्तजाम कील-काँटे से चौकस बैठाला जा चुका था। जानदार दो लड़ाकू अपनी-अपनी घात में थे। अपने-अपने बचाव में थे। पासा पड़ने को था। जान की बाजी लगाई जा रही थी। दोनों की जितनी अकलें थीं प्रतापगढ़ के नीचे चकरा रही थीं।

क़िले में भी पूरा प्रबन्ध किया गया। जाने के पूर्व शिवाजी ने आगे के राज्य-संचालन तक के लिये व्यवस्था कर दी, काश कुछ गड़बड़ हो जाये; उनकी मृत्यु हो जाये या वे कैद कर लिए जायें। अमुक-अमुक व्यक्ति अमुक विभाग का कार्य संचालन करते रहेंगे।

बहुत प्रतीक्षा के पश्चात् वह दिन आया। सुबह से ही एक ओर प्रतापगढ़ और दूसरी ओर अफज़ल खां के कैम्प में बेहद चहल-पहल थी। लोगों में बहुत कौतूहल था। हर आदमी समय को घटा कर वह क्षण सामने लाना चाहता था जब एक शत्रु का विनाश दूसरा देख सके।

क़िले में शिवाजी ने नित्य कर्म से निवृत्त होकर भवानी की पूजा की। आज की पूजा शिवाजी कुछ अधिक देर तक करते रहे। पूजा के बाद उन्होंने बहुत खुश-खुश जलपान किया। अनाजी दत्तो तथा बाला जी आवजी के पास बैठ कर तरह-तरह से हँसी करते रहे। आज वे सुबह से ही बहुत खुश थे।

दोपहर को तीन-चार बजे के लगभग उन्हें भेंट करना था, वह भेंट जो जीवन में मौत भी ला सकती थी और विजय भी। वह भेंट जो बन्दी भी बना सकती थी और स्वतन्त्रता के युद्ध में जीत की एक इकाई और जोड़ सकती थी। वह भेंट जो बुद्धि-बल की परीक्षा थी। वह भेंट जो बाहु-बल की परीक्षा थी।

धीरे-धीरे शिवाजी ने चलने की तैयारी की। कपड़े पहने। कपड़ों के अन्दर लोहे की महीन जंजीरों का ज़िरह-बख्तर पहना। अपने सर की रक्षा के लिये उन्होंने एक लोहे की टोपी पहनी उसके ऊपर साफ़ा बाँधा। सब पोशाक खुली व ढीली-ढाली थी। उन्होंने एक बहुत लम्बा और झूलता-झालता अंगा पहना जिसकी ढीली-ढाली बाँहों में एक में बिछुवा या छोटी कटार तथा दूसरे में बघनखा या शेरपंजा पहना।

और अब चलने की तैयारी हुयी। शिवाजी ने मां के चरण छुये। क़िले के अन्य लोगों से मिले। तब उन्होंने पुकारा—"जीव महला!... काव जी!"

"जी हाँ......जी हाँ"—दो आवाजें एक साथ आयीं :

"चलो।"

और दो मराठे जवान अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सामने आ गये।

इनके भी अपने-अपने इतिहास थे। इनमें काव जी एक भयंकर प्राणी था। अफज़ल खां की ही तरह ख़ूंख्वार और उसी की तरह का अतीत भी रखता था अपना। जिस प्रकार अफज़ल खां ने अपने कैम्प में आत्म-समर्पण के लिये आये हुये शेरा के राजा कस्तूरी रंगा की धोखा देकर निर्दयता पूर्वक हत्या कर दी थी। उसी प्रकार शिवाजी के कैम्प में आत्म समर्पण के लिये आए हुए हनुमन्त राय मोरे का वध काव जी कर चुका था। शिवाजी ने तलवार के तेज़ हाथ चलाने वाले तथा अनेक प्रकार के हथियारों को खूबी से इस्तेमाल करने वाले इन दो मराठों को अपने साथ ले जाने के लिए ही विशेष रूप से चुना था।

समाज और देश के संघर्ष में अपने व्यक्ति पर एक बड़ा ख़तरा लेकर शिवा राजा ने क़िले के रास्ते की कॅकरीली ढलवा ज़मीन पर पैर रखना प्रारम्भ किया। फाटक पार किया। एक नज़र नीचे फेंकी। बड़ी कारीगरी से बनी हुयी पत्तियों से छायी कुटिया को देखा। दूर छिटके हुए तथा पेड़ों के झुरमुटों से खोपड़ी निकाले उन सिपाहियों पर नज़र डाली जो अफज़ल की रक्षा के लिये चारों ओर टिड्डी की तरह छाये हुए थे।

सर पर सूर्य तप रहा था। अगले घंटे क्या होगा—इसमें मन उलझा हुआ था और आत्म-बल अधिक सशक्त होता चला जा रहा था। एक बार ध्यान आयी वह मासूम शकल, माँ के वे छलछलाये आंसू और ऊपर से दिलासा देने की पूरी हिम्मत भरा वह दाहिना हाथ जिससे उन्होंने कहा था—"बेधड़क रहना। तेरा बाल भी बाँका न होगा। जा, मेरे शेर बच्चे!"...और उनके जीवन-निर्माण में ऐसे शब्द ही तो कितने बड़े सहारे रहे थे, आज तक।

और शिवाजी के पग पहाड़ पर उतरने लगे। दोनों रक्षक पीछे-पीछे आ रहे थे। शिवा से अधिक उत्साह उनमें था। दोनों के चेहरे दमक रहे थे। 'आज ही तो मजा आयेगा।' कौशल दिखाने को मिलेगा।

---

१. बघनखा या शेरपंजा जो उँगलियों या पंजों में पहना जाता है।

क्यों—इसलिए कि पहले तो मना हो गया था कि शिवा राजा अकेले ही जायेंगे। उनके साथ कोई नहीं जायेगा। तब खबर मिली—दो आदमी जायेंगे और दो जो चुने गये वे थे वे। बस उन्हें मज़ा आ गया। क़ाव जी बोला—"मां! अफज़ल का सर लाकर तेरे चरणों में न रक्खा तो तेरे सामने नहीं आऊँगा"—और उसने शिवाजी की माता जीजाबाई के चरण चूम लिये। दूसरा जीव महला हँस कर बोला—"मां! यह सर लायेगा तो मैं पालकी की टांग ही काट लाऊँगा।...पालकी में आयेगा न वह, धूर्त।"

दोनों की पीठ जीजाबाई ने थपथपायी, और बोलीं—"इतनी भीड़ में अकेले जाना है। लोहे के चने हैं। लोहे के। फिर बहादुरी का मुकाबिला तो बहादुरी से करोगे। धोखे का क्या करोगे?"

"हम तो धोके को भी तलवार ही से छेद देंगे। हमारे सामने धोखा कैसा? जब-तक हाथ में 'यह' है तब धोखा-ओखा पास नहीं फटक सकता। वो हज़रत आयेंगे तो मुँह की खायेंगे"—काव जी ने फिर उत्तर दिया।

इसीलिए बड़े मगन जा रहे थे दोनों मराठे।

तो शिवा राजा दो-चार कदम बढ़े होंगे कि सामने दिखायी दी—दूर बहुत दूर वह फौजी बस्ती जिसे अफ़ज़ल खुशखबरी सुन कर ढोल-मंजीरे बजाने के लिये छोड़ कर आने वाला था।

× × × ×

उस पर्णकुटी में वे दो ब्राह्मण गोपीनाथ और कृष्ण भास्कर कुलकर्णी पहले से ही आ डटे थे। इनमें से एक को निश्चित मालूम था कि उसके मालिक की तरफ से धोखे से बचाव के पूरे इन्तजाम हैं। लेकिन दूसरा यह नहीं जानता था कि धोखे क्या हैं और बचाव क्यों हैं? वह तो दो हिंसकों की अहिंसा पर विश्वास कर बैठा था। बेचारा यह ब्राह्मण अधिक सीधा था—कुलकर्णी था न। वह समझता था कि

उसका मालिक बड़ी ईमानदारी का काम करने जा रहा है। उसका मालिक अफ़ज़ल खां सचाई का फरिश्ता है।

और तभी उस कुटी में चहल-पहल हो गयी। उसका मालिक आ गया।

कुटी के फाटक पर पालकी चमकी और उछलता हुआ दैत्य अफ़ज़ल खां देखते-देखते ऊँचे तख्त पर आ खड़ा हुआ। उसके पीछे उसके दो अंग-रक्षक थे। पालकी फाटक पर से हट गयी।

अफ़ज़ल खां ने एक नजर चारों तरफ फेंकी। उसकी भौंहें तन गयीं और वह एकदम बिगड़ उठा :—

"अच्छा...यह ठाठ! मामूली जागीरदार की औलाद और ये कालीन? ये रेशमी झालरदार चादरें? नाश्ते के ये चाँदी-सोने के बर्तन? मेरे सामने इतने रुआब दिखाए जा रहे हैं।"

गोपीनाथ को लगा जैसे वह—(अफजल खां)—बेमतलब लड़ाई छेड़ना चाहता है। तभी उसने विनय सहित कहा—"हुजूर! ऐसा नही है। ये सब तो आपके लिए हैं। आपकी खातिर–तवाजोह के लिये। बाद में यह सब भेंट के रूप में आपके साथ बीजापुर चला जायेगा।"

"हूं......", एक ऐंठ के साथ कहते हुये अफ़जल खां उस सजे हुए तख्त पर बैठ गया।

"कहाँ है, वह छोकरा! जल्दी बुलाओ।"

"हाँ! आते ही होंगे।"

थोड़ी देर अफ़जल खां शान्तिपूर्वक बैठा रहा। गोपीनाथ ने देखा—बैठे-बैठे कभी उसकी बाहें फड़कती थीं। कभी भौंहें तनती थीं। कभी जैसे वह खुद तख्त पर हिल जाता था। तब अनायास अफ़जल खां ने फिर कहा :

"तो मैं उन साहब का इन्तजार करूँ? जाइये, बुलाइये।"

"जाता हूँ", कहकर पन्ताजी पन्त चल दिया।

मार्ग में ही उसकी भेंट शिवाजी से हुयी। अतः पन्ता जी भी लौट पड़ा।

पन्ता जी बोला—"आज तो खां बहुत बिगड़ रहा है। इच्छा हो तो न जाइये।"

"वाह पन्ता जी! क्या बात करते हो? सूरमाओं के पैर बाहर निकल कर फिर कहीं लौटते हैं? चिन्ता क्या करते हो?...विजय तुम्हारी ही होगी," शिवा राजा ने दूने उत्साह से कहा।

"काव जी! ध्यान रखना जो कुछ होना होगा, पहुँचते-पहुँचते ही होगा। उसी समय विशेष चौकन्ने रहना", शिवा राजा ने अपनी गर्दन घुमा कर कहा।

"आप निश्चिन्त रहें।"

"परन्तु एक बात है, महाराज!"

"क्या?"

"अफ़ज़ल अपने साथ उस मशहूर बीजापुरी तलवार बाज सय्यद बाँदा को भी लाया है। दो में से एक वह है", पन्ता जी ने कहा।

तत्काल पीछे से जीव महला ने प्रश्न किया—"कैसे मालूम?"

"कुलकर्णी ही इशारे से बता रहा था।"

"पन्ता जी! बांदा को अन्दर मत रहने दीजियेगा। वह बहुत ख़तरनाक आदमी है। मै उसे पहचानता हूं। उसके तलवार चलाने को जानता हूं। कि एक हाथ में तीन नहीं सात तरफ तलवार चलाता है वह", जीवमहला ने फिर कहा।

"तो चिन्ता क्या करते हो। तुम्हारे साथ तुम हो। यह काव जी है ..", शिवा राजा ने स्फूर्ति सहित कहा।

"पन्ताजी! आप राजे जी को कहने दीजिए। मेरे कहने पर बांदा को मिलने की जगह से हटा दीजिये।...राजे जी! मैं आपसे प्रार्थना करता हूं बांदा हट जाये तब चलिये।"

क़िले में जीजाबाई, अनाजी दातो तथा बालाजी आबाजी सूचनाओं

के लिये बहुत बेचैनी से प्रतीक्षा कर रहे थे। जीजाबाई निरन्तर इधर से उधर टहल रही थी।

उस मां का हृदय—जिसका सपूत जान-बूझकर आग से जूझने गया हो। सांप से खेलने गया हो। अकेला एक कौरवों के चक्रव्यूह में फँसने गया हो और वह गया हो कि "जा रहा हूं। न आऊँ तो रोना मत", उसके आने की प्रतीक्षा तो माँ और अधिक अधीरता से करेगी।

और उधर शिवाजी का भी 'हुँकारा' पाकर गोपीनाथ (पन्ता जी पन्त आगे बढ़ा और शिवाजी से पहले अफ़जल खां के निकट पहुँचा और बोला—"सय्यद बांदा को हटाना पड़ेगा। या तो दूसरा आदमी बदल लीजिये या एक आदमी आप रखिये एक ही शिवा राजा लायेंगे।"

"बांदा! कैम्प वापस चले जाओ। अभी, इसी वक्त, सीधे।... पन्ता जी! कह दो एक ही आदमी रहेगा फौरन बुलाइये जनाब! फौरन। मुझे काफी देर हो चुकी है।

"अभी लाया, हुज़ूर।"

× × × ×

पहाड़ी में उतर कर पर्ण-कुटी तक पहुँचते हुये शिवा राजा को किसी ने नहीं देखा और तब अनायास शिवा राजा ने कुटी में प्रवेश किया।

एक झलक में उन्होंने खां को देखा, तख़्त पर उसके दाहिनी ओर रक्खी तलवार और कटार को देखा, नज़र फेर कर अफ़ज़ल खां के दूत कृष्णा जी भास्कर कुलकर्णी को देखा; पन्ता जी पन्त को देखा और अन्त में उस सिपहसालार को देखा जो राक्षस की सी शकल में दरवाजे के पास खड़ा कभी बाहर कभी अन्दर चौकन्ना होकर देख लेता था। वह चुस्त सफेद पाजामा, सफेद लम्बा कुर्ता व सफेद साफ़ा पहने था। उसकी कमर में बंधी चमड़े की पेटी में तलवार, किर्च व कटार बँधी थीं। एक तलवार वह हाथ में भी लिये था। कुर्ते के ऊपर वह हरे रंग की चुस्त बंडी कसे हुये था।

चारों ओर का दृश्य हृदयंगम करके शिवाजी अफ़ज़ल खां से मिलने

आगे बढ़े। तुरन्त कुलकर्णी के मुंह से निकला :

"पूना के श्री शिवा राजे !"

"राजा जी ! जनाब अफज़ल खां साहब, सूबेदार कनकगिरी !" पन्ता जी पन्त ने कहा।

तख्त से भूमि पर उतर कर अफ़ज़ल खां ने बड़े तपाक् से शिवा राजा को गले से लगा लिया। शिवा राजे भी तेजी में आगे बढ़े थे।... और धीरे-धीरे शिवा राजे ने अनुभव किया—अफज़ल ने उनके फाँस डाल दी है और वह उन्हें कसता जा रहा है—कसता जा रहा है। तब अनायास ही एक आवाज़ हुयी खन्न। यह आवाज़ उस कटार की थी जो अफज़ल खां ने शिवा के पेट में घुसेड़ी थी परन्तु वह लोहे के कोट पर 'खन्न' की आवाज़ करके रह गयी थी। बस—

इतना काफ़ी था। शिवा राजे ने अपने बिछुवा को पलक मारते अफज़ल खां के पेट में घुसेड़ दिया और जब तक पुकार आई—"खून धोखा, खून ! बचाओ; बचाओ...।"

चिल्लाते-चिल्लाते अफ़ज़ल खां ने अपनी तलवार का एक भरपूर हाथ शिवा राजा के सरपर दे मारा जो इतना तेज़ था कि सर की लोहे की टोपी के दो टुकड़े हो गए और सर पर हलकी खरोंच आई किन्तु शिवा राजा के बिछुये की चोट ने अफज़ल खां को भूमि पर गिरा दिया।

तब तक शिवा राजे ने गिरे हुए अफ़ज़ल का पेट बघनखे से चीर कर उसकी अँतड़ियाँ बाहर निकाल दीं।

पीछे से अफज़ल खाँ के अंग रक्षक ने शिवा राजा पर वार किया जिसको शिवा राजे के अंग रक्षक जीव महला ने संभाला और दूसरी तलवार उसके पेट में पार कर दी।

दोनों ओर के दूत—कृष्णा जी भास्कर कुलकर्णी एवं पन्ता जी पन्त—"क्या हुआ" यह हतप्रभ होकर देखते ही रह गये।

शिवा राजा पन्ता जी पन्त को साथ लेकर दृश्य से ओझल हो गये।

अफ़ज़ल खां की पालकी उठाने वालों ने खां की लाश उठा कर पालकी में रखना चाही कि पहले से ही पालकी के पास खड़े काव जी ने आगे बढ़ कर कहा :

"इसको कहाँ लिए जाते हो।"

और कहते-कहते काव जी ने अफ़ज़ल की गर्दन काट कर जीजा-बाई के चरणों पर चढ़ाने के लिए हाथ में ले ली।

पल भर में अफ़ज़ल के पन्द्रह सौ सूरमा जंगल से धीरे-धीरे निक-लने शुरू हो गए परन्तु मौकों-मौकों पर लगे शिवा राजा के रण बांकुरों ने एक-एक को काटना शुरू कर दिया। बीजापुर सिपाहियों के भागने के हर रास्तों पर मराठे डटे हुये थे।

और

शिवाराजा पन्ता जी पन्त के साथ जीव महला को लिये हुये क़िले में पहुँच चुके थे।

अफ़ज़ल खां का कटा हुआ सर लिए हुये काव जी पीछे-पीछे जा रहा था।

: २६ :

क़िले में पहुँच कर विजय की तोप दागी गयी। यह एक पूर्व निश्चित संकेत भी था कि उसे सुनते ही मराठे बीजापुरी सेना से जूझ जायें।

मोरो त्रिम्बक तथा नेता जी पलकर अपने साथ हजारों मावल जवानों को लेकर चार तरफ से अफ़ज़ल खाँ के कैम्प पर टूट पड़े। अफ़जल खाँ की सेना यों ही अपने नेता की मृत्यु का समाचार सुनकर त्रस्त थी। उस पर इस अचानक हमले से बीजापुरी सेना बौखला गयी। तीन घंटों तक युद्ध चला तब अन्त में बीजापुरी सेना ने सफेद झंडे फहरा दिये।

हथियारों की गाड़ियाँ, शामियाने, लड़ाई का बहुत सा सामान, अधिक मात्रा में धन, अशर्फियाँ, जवाहरात, बोझा ढोने की गाड़ियाँ व जानवर; पैंसठ हाथी, चार हजार घोड़े, बारह सौ ऊँट, कपड़े के दो हजार बण्डल और नगदी तथा जवाहरात सब मिलाकर लगभग दस लाख रुपया मराठे रण बांकुरों को अफ़ज़ल खाँ की सेना की लूट में मिला।

अफज़ल खाँ के साथ आये हुए अफज़ल खाँ के दो लड़के, बहुतेरी स्त्रियाँ, बच्चे, दो मराठा सरदार क़ैद किये गये। अफ़ज़ल खां का बड़ा लड़का फज्ल खाँ तथा अफजल खाँ की बेगमें छिपकर भाग गयीं।

इसके बाद शिवाजी स्वयं प्रतापगढ़ किले के नीचे आकर खड़े हो गये तथा एक-एक स्त्री, बच्चे व कैदी को सामान, भोजन तथा धन दे-देकर मुक्त करते गये।

और यह जीत बीजापुर पर मराठों की जीत थी। यह जीत शिवाजी की सबसे बड़ी जीत थी। इस जीत का बड़ा शोर हुआ। इसका इतना ही शोर हुआ जितना अफ़ज़लखां का प्रतापगढ़ की ओर कूच का था।

क्योंकि अफज़ल ख़ां बहुत शोर करता, नगाडे पीटता, डंके बजाता, तूफान मचाता, तोड़-फाड़ करता, न जाने कितना धन लूटता, सेना के ख़र्च पर लुटाता चला आया था। सब ओर तहलका था। बीजापुर दरबार टकटकी बाँधे नतीजे के इन्तजार में था। इस युद्ध के फल पर मुग़ल शहंशाह भी रुका हुआ था कि इसके बाद दक्खिन में उसे किधर बढ़ना है बीजापुर की ओर या शिवाजी की ओर। क्योंकि वह सोचता था कि इसमें जो हारेगा वही लड़खड़ा जायेगा। वही हुआ भी। बीजापुर सल्तनत चरमरा कर रह गयी। हिल उठी। दहल गयी।

अफ़ज़ल खां की हार बड़ी हार थी। उसका उतना ही शोर हुआ जितना उसकी चढ़ाई का। दुनिया थर्रा कर रह गयी।

शिवाजी की धाक जमी।

और

मराठे बहुत खुश थे।

पूना, प्रतापगढ़ बहुत खुश थे।

शिवा बहुत खुश थे

क्यों, क्योंकि

एक 'बहादुर-दुश्मन' पर विजय मिली थी।

उससे अधिक प्रसन्नता हुयी बंगलौर में बैठे पिता शाहजी को, बड़े भाई शम्भा जी को। और, और माता, माता जीजाबाई को—उस श्वेत-वस्त्रों से विभूषित देवी को जो उस विजय की जननी थी।

इस विजय की प्रसन्नता में शिवा राजा ने एक बड़ा दरबार प्रताप

गढ़ क़िले में आयोजित किया।

× × ×

प्रातःकाल का सुहाना समय था।

आज विजय-दिवस मनाया जा रहा था। प्रतापगढ़ क़िले को हरी पत्ती की तोरणों, बन्दनवारों तथा लाल-पीले-रंग की कपड़े की झंडियों से खूब सजाया गया था। क़िले के राजमहल के बाहर के बडे मैदान में बड़ा सा कपड़े का शामियाना लगाया गया था। सब ओर भगवे झंडे लहरा रहे थे।

सोने के खम्भों के साथ केले के खम्भे सुनहली डोरियों से बाँधकर एक वेदी बनायी गयी थी जहाँ बैठकर अनेक पण्डित तथा शिवाजी के गुरु जिनमें मुख्य गुरु सिद्धेश्वर, याकूत के बाबा केलसी, पटगांव के मौनी बाबा, निश्चलापुर गोसांईं, पोलदपुर के परमानन्द बावा जयराम स्वामी नारायणदेव, निगदी के रंगनाथ स्वामी तथा उनके भाई विट्ठल स्वामी, आनन्द मूर्ति, धामन गांव के बोधले बाबा एवं बारायनी के त्रिम्बक नारायण आदि वेदपाठ तथा भगवन्नाम कीर्तन कर रहे थे। बीच-बीच में भगवान शिव, राम कृष्ण एवं मारुति के जय-जयकारों से तथा शिवा राजा की जय से आकाश मण्डल गूँज रहा था।

इस वेदी के पीछे शिवा राजा का सिंहासन था जिस पर प्रसन्न मुद्रा में शिवा राजा विराजमान थे।

उनके बराबर जीजाबाई अपने सदैव के उसी वेश तथा प्रसन्न सात्विक मुद्रा में बैठी हुयी थीं।

दूर तक चौकियाँ बिछी हुयी थीं जिन पर श्यामराज नील कंठ पेशवा, वासुदेव बालकृष्ण, सोना जी विश्वनाथ दाबिर, बालकृष्ण पन्त, नारो पन्त हनमन्ते दीक्षित, महादाजी शामराज सूर्नी, नरबेग सारनौबत (कमाण्डर-इन-चीफ) तथा पन्ता जी गोपीनाथ पन्त चिटनिस आदि सभी मन्त्रिगण एवं सेना के अधिकारी विराज रहे थे।

इसके अतिरिक्त पूना के अनेक गण्यमान नागरिक दूर-दूर तक फैले

हुये थे जिनमें कुछ बैठे थे और जिनको जहाँ स्थान मिला खड़े होकर शिवाराजा के दरबार का दृश्य देख रहे थे।

कन्हो जी जेडे, दादा जी नरस प्रभु, गोमा जी नायक पाना सम्बल पेशाजी कन्क, तानाजी मलूसरे, बाजी पसलकर, बाजीराव जेधे आदि भी उपस्थित थे।

इसके अतिरिक्त उन सभी प्रान्तों से वे सब देशमुख एवं कुलकर्णी एकत्र हुये थे जिनको शिवाराजा ने अब तक बीजापुर से जीता था। वे अपने साथ अधिक संख्या में सोने-चांदी के अलंकार, उपहार, जवाहरात, नकदी व सोना उपहार में लाये थे।

इसके अतिरिक्त मराठा सेना के अन्य अनेकानेक अधिकारी, सरदार सेना नायक उपस्थित थे। एक सैन्य दल कल्यान से आया था। कई मराठा व मावल टुकड़ियाँ पूना से आई थीं।

जीव महला तथा शम्भू जी काव जी अलग ही जीत की खुशियां मनाते चारों ओर घूम रहे थे।

अन्त में, वेद पाठ व कीर्तन होने के पश्चात् मुख्य दरबार की कार्यवाही शुरू हुयी।

उपस्थित जन-समुदाय में एक बार कोलाहल मच गया :

"शिवा राजा की जय"

इसके पश्चात् सर्वत्र शान्ति हो गयी। इस सब कार्यवाही के अतिरिक्त आज इस समारोह की विशेषता यह भी थी कि विजय-उत्सव के शुभावसर पर शिवा राजा को 'छत्रपति' उपाधि से विभूषित किया जाना था।

सबसे पहले चकन के गुरु सिद्धेश्वर भट्ट ब्रह्मे उठ कर खड़े हुये। शिवाराजा के समक्ष उन्होंने हाथ जोड़े। उनके खड़े होते-होते शिवाराजा भी उनके सामने आकर खड़े हो गये। तत्काल ही गुरु सिद्धेश्वर ने उन्हें आसन पर विराजे रहने का संकेत किया। इसके बाद गुरु सिद्धेश्वर ने प्रारम्भ किया :

अखंडित लक्ष्मी आलंकृत राजमान्य, राजश्रिया विराजित छत्रपति राजा शिवाजी महाराज ! शिव नरपति हर्ष निधान। श्याम राज मति मंत प्रधान !

"महाराष्ट्रो जनपद: तदानीं तत्समाश्रयात्

अन्वर्थ तामन्वगमत् समृद्धजनतान्वित: ।

गुरु सिद्धेश्वर के साथ सभी गुरु पद एवं पंडित गण खड़े थे और उनके बोलते समय छत्रपति शिवाजी पर अक्षत और पुष्पों की वर्षा करते जाते थे।

गुरु सिद्धेश्वर ने तब आगे कहा :

"क्षत्रिय कुलावतंस, सिंहासनाधीश्वर, महाराज छत्रपति शिवाजी एवं उपस्थित महाराष्ट्रीय जनता-जनार्दन: !

आज कितने हर्ष का समय है कि जब अपने सिंहासनाधीश्वर को हम 'छत्रपति' पद से विभूषित कर रहे हैं। वास्तव में यह तो एक विशेष प्रसन्नता का अवसर है जब हम समारोह पूर्वक इस पद को 'महाराजा' पर आरोपित कर रहे हैं अन्यथा इस पदवी को तो सन्त बाबा तुकाराम ने अनेक वर्ष पहले ही शिवाजी महाराज को प्रदान किया था। उन्होंने ही सर्वप्रथम श्री महाराज को छत्रपति पद से सम्बोधित व सम्मानित किया था।

एक बार आकाश में जयकारा गूँज गया :

"क्षत्रपति महाराज शिवाजी की जय"

गुरु सिद्धेश्वर कहते रहे :

"जिस विजय की प्रसन्नता में यह विजय-दिवस आयोजित किया गया है उसके सम्बन्ध में इस समय चर्चा करना निरर्थक है उसके लिये तो आप उस वस्तु को सामने देख लीजिये......।"

कहते हुये गुरु सिद्धेश्वर ने उँगली का संकेत किया जिससे सभी की दृष्टि उधर घूम गयी—

वह एक हरे बांस पर लटकती हुयी मृतक अफ़ज़ल खाँ की कटी

हुयी गर्दन थी।

जान बूझ कर काव जी उस बांस के पास उस समय देर से खड़ा था और अपनी नंगी तलवार मसखरों की तरह बारम्बार खोपड़ी की ओर कर देता था।

उस दृश्य को देखकर उपस्थित समुदाय ठहाका मार कर हँस दिया।

"अस्तु, आज मैं समस्त महाराष्ट्र एवं एतद्देशीय जन प्रतिनिधियों की ओर से जन नायक शिवाजी महाराज को 'छत्रपति' पदवी से विभूषित करता हूँ।"

तत्काल एक तोप दगी।

कतारों में खड़े हाथियों ने अपनी सूँडें ऊपर उठाकर छत्रपति शिवाजी को सलामी दी।

सब ओर नगाड़े, तम्बूरे, तुरहियाँ एक साथ बज उठीं :

उन गगन बेधी स्वरों के बीच स्वर गूँजा

"छत्रपति शिवाजी महाराज की जय।"

इसके पश्चात् थोड़ी ही देर में सब ओर शान्ति हो गयी तथा छत्रपति शिवाजी की ओर से पेशवा श्याम राज नीलकंठ ने खड़े होकर घोषणायें पढ़ना प्रारम्भ किया :

"सर्वप्रथम आज के इस अवसर पर आयी हुयी समर्थ बाबा रामदास की शुभ-कामना मैं पढ़ कर सुनाता हूं :

"विजय चिरस्थायी हो। दृढ़-संकल्प बने रहना।" "हिंदवी-स्वराज्य" कल्पना पूर्ति पर बधाई। मारुति सेना तथा हरि-कीर्तन न भूलना। यह राष्ट्र, धर्म, समाज व संस्कृति की महान् विजय सिद्ध हो।"

तत्पश्चात पेशवा ने कहा :

"छत्रपति शिवाजी महाराज की ओर से आज के विजय-दिवस पर कल्यान के सूबेदार अबाजी को 'मजूमदार' पद से विभूषित किया जाता है।

"अना जी दत्तो को सूर्ती (सचिव) पद दिया जाता है ।"

"बाला जी आव जी को चिटनिस बनाया जाता है ।"

इसके बाद एक लम्बी सूची उन्होंने पढ़ कर सुनायी जिसमें सेनापतियों के अतिरिक्त अन्य बहुतेरे कार्यकर्ताओं को अनेक प्रकार से उच्चपदों से विभूषित किया गया था ।

जीव महला, कावजी एवं अनेकानेक मराठा सरदारों के कार्यों का गुणगान किया गया । उन्हें बहुत सी धन-सम्पत्ति भेंट में दी गयी ।

इसके पश्चात् सेना नायकों को नक़द धन, सोना, चाँदी, जवाहरात, पोशाकें, कपड़ा, हाथी, घोड़े, ऊँट बाँटे गये ।

बहुत लोगों को जागीरों के दान पत्र दिये गये ।

कुछ अपाहिजों या मृतकों के घर वालों को पेंशनें घोषित की गयीं ।

अनेक धार्मिक पंडितों को धन, जवाहरात, पोशाकें प्रदान की गयीं ।

गुरु सिद्धेश्वर को स्वयं छत्रपति शिवाजी ने सोने की सौ हून तथा एक लम्बी जागीर का दान-पत्र समर्पित किया ।

तत्काल गुरु सिद्धेश्वर ने दान-पत्र स्वीकार किया और बोले :

"'हिन्दवी-स्वराज्य' की कल्पना आज पूर्ण हुयी ।"

तदनन्तर अजानदास एवं सभासद ने काव्य-पाठ किये ।

समस्त कार्यक्रम कई घंटों तक चलता रहा ।

इस प्रकार विशेष हर्षोल्लास से विजय-उत्सव मनाया गया जिसका महत्व राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, साँस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामरिक एवं वैयक्तिक दृष्टि से अत्यधिक था । इन तमाम दृष्टियों से वह देश के उत्थान का स्मृति-दिवस था ।

एक प्रकार से उसी दिन छत्रपति शिवाजी के 'हिन्दवी-स्वराज्य' का स्वप्न पूरा हुआ और वे अपने समर्थ एवं सम्पूर्ण मन्त्रि मण्डल सहित 'छत्रपति' विभूषित हुये ।

: २७ :

चारों ओर काला, बहुत काला अँधियारा छाया हुआ था। लग रहा था जैसे आसमान में बैठे किसी यम की काली पुतली की स्याही सारी दुनियाँ में फैल गयी हो तभी उस कालिख में इतना डरावनापन भी साथ था। चारों ओर मौत का सा सन्नाटा छाया हुआ था। धार-दार तेज हवा तलवार की धार की तरह बदन को छूकर दूर हो जाती थी। बस, कहीं किनारे से तलवार चमकती तो उसकी रुपहली धार में बिजली की कड़क सी फट पड़ती थी।

यहीं पास की पहाड़ी और आगे के मैदान पर घोड़े अपनी हिन-हिनाहट में चौंका रहे थे—खबरदार रहना। जागते रहना। दुश्मन चारों तरफ है। दुश्मन ? एक के लिये दूसरा।

"क्यों ?"

"आप जा सकते हैं। मैं इनके साथ हूँ। एक हजार जवानों को जुझा दूँगा। बीच में दुश्मन रुक गया तो आप पार हो जायेंगे !"

"ठीक है। लेकिन जो पड़ाव घाटी पर पड़ा है उसका क्या करोगे !"

"वहाँ तक तो पहुँचना ही है। उसके बाद रास्ते दो हो जाते हैं। आप दाहिनी तरफ से मुड़ जाइयेगा। विशाल गढ़ ज्यादा दूर नहीं है......"

"लेकिन बाजी प्रभु ! उस पहाड़ी वाले पड़ाव पर है कौन ?"

"बाप का बदला लेने आया है। अफ़ज़ल खां का लड़का फज्ल खाँ।"

"ओह ! तो आदिलशाही ने दूसरा शेर बच्चा भेज दिया।"

और एक ठहाके की हँसी गूँज गई।

"शीं-शीं ! (ओठों पर उँगली रखकर) ख़ामोश।"

"लेकिन राजे जी ! इन हज़ार घोड़ों की टापों की आवाज़ें ?"

(और ज़ोर का ठहाका) यह तो मैं भूल ही गया।

(तभी एक ज़ोर की आवाज़ आई)—दुश्मन आ गया। पीछे से तीर आया है।

"राजे जी ! जौहर की सेना आ गयी। क्या मैं पीछे लौटूं ?"

"नहीं, बाजी प्रभु ! आगे बढ़ते आओ। जौहर ख़ाली तमाशा बनाये हैं। वह पन्हाला को ही घेरने का स्वांग दिखाता रहेगा; करे-धरेगा कुछ नही।"

"मैं समझा। कितनी घूस दी राजे जी ?"

"इस वक्त छोड़ो इस बात को······अपने मशालची कहाँ है ? इस मैदान को पार करते ही हमको रोशनी की ज़रूरत पड़ेगी।"

"सब साथ हैं।"

अँधेरे में बातचीत की आवाज के अलावा आँखों मे किसी को कुछ सूझ नहीं रहा था। पन्हाला क़िले में बहुत समय तक घिरे रहने के बाद शिवाजी इस अँधेरी रात में वहाँ से भाग रहे थे।

अफ़ज़ल खां की मौत के बाद आदिलशाह द्वितीय बहुत बौखला उठा था। उसने अपने अबीसीनिया के गुलाम सिद्दी जौहर या सलाबत खां को पन्द्रह हज़ार सिपाहियों की फौज लेकर शिवाजी को घेरने के लिये भेजा था। दूसरी ओर अफ़ज़ल का लड़का फज्लखां पास की एक पहाड़ी पर आ डटा था और उसने भी पन्हाला में शिवाजी पर घेरा डाल दिया था। तभी उस अंधियारी रात को शिवाजी चकमा देकर निकल भागे।

गजपुर दर्रे पर फज़्ल के आदमियों ने घेरना चाहा परन्तु शिवाजी तब तक सत्ताइस मील दूर विशालगढ़ पहुँच कर सुरक्षित हो चुके थे।

बाजीप्रभु और उसके काफी आदमी मारे गये।

अब यह स्वाभाविक था कि जीत के बाद कहीं हार के भी दर्शन होते क्योंकि चारों तरफ बौखलाहट भरी हुयी थी। मुग़ल सेना ने उधर अपना दबाव बढ़ा रक्खा था। नये सूबेदार साइस्ता खां ने छत्रपति शिवाजी के विरुद्ध उत्तर से हमला करना शुरू कर दिया था।

पूरब और दक्खिन की तरफ के किलों पर घेरे डालते हुये साइस्ता खां ने पूना की ओर बढ़ना आरम्भ किया। उसने पूना पर कब्जा किया। चकन और फरेन्दा क़िले अपने काबू किये और शिवाजी के लाल-महल में उसने अपना झंडा गाड़ दिया।

घोड़े की सेना और उस लड़ाई में प्रसिद्ध नेता जी का मुग़ल सेना ने बहुत पीछा किया किन्तु तीन सौ घुड़सवारों की आहुति देकर नेता जी निकल भागा। वह स्वयं भी काफी घायल हो गया।

लेकिन पूना के जाने की चोट शिवाजी के दिल पर बहुत गहरी बैठी हुयी थी। वह बहुत बड़ा अपमान था। उनका घर छिन गया था। यों छत्रपति शिवाजी इन दिनों पूना में नहीं रह रहे थे फिर भी वह स्थान था जहाँ उनका बालपन बीता था। यौवन का प्रारम्भ हुआ था और हिन्दवी स्वराज्य की लड़ाई की नींव पड़ी थी।

जहाँ अफ़जलखां की हार पर रात में दीवाली मनाई गयी थी दिन में नगाड़े बजाये गये थे। वह सरदार बीजापुर का था और यह दूसरा था दिल्ली सल्तनत का।

परन्तु छत्रपति की तलवार दोनों को—(आदिल शाह और मुग़ल शाह)—ललकार रही थी। दोनों छत्रपति के पीछे भाग रहे थे।

और लग रहा था दोनों बीच में भींच कर शिवा राजा को पीस डालेंगे परन्तु शिवा राजा भी मोम का बना हुआ नहीं था। राजनीति के हर दाँव-घात को उसने जाना-पढ़ा था। वह कोणदेव का शिष्य था।

वह जीजाबाई का बेटा था। उसने समर के जोश अपने मराठों से सीखे और उन्हें सिखलाये थे जिनके खून का हौसला समर्थ गुरु रामदास ने गरमाया था।

इसी कारण उसके वह सुई चुभ रही थी जिसकी नोक पूना से लाये काँटे से ही निकाली जा सकती थी।

तभी इधर की हलकी-फुलकी पराजय के एक महीने के अन्दर-अन्दर छत्रपति शिवा राजा ने वह योजना बनाई जिसने एक बार फिर सब के रोंगटे खड़े कर दिये : अफ़ज़ल खां की याद धुंधली और साइस्ता खां की ताज़ी हो आई। यह वार पहले से तगड़ा था और अपने से तगड़े पहलवान पर कसा गया था। इस झोंके में बीजापुरी सुल्तान नहीं शहंशाहे मुग़लिया आया था।

उधर अक़बर और जहाँगीर के बाद मुग़लों का आखिरी आशिक मिजाज और हुस्न परस्त शहंशाह शाहजहाँ का चिराग़ गुल हो चुका था और उसकी जगह अजीब सनकी शहंशाह औरंगजेब तख़्तेशाही पर जम चुका था।

औरंगजेब की दिलचस्पी शाहजहाँ के जमाने से ही दक्खिन पर थी। वह दक्खिन का गवर्नर भी रह चुका था और औरंगाबाद बसा चुका था। इसलिये दक्खिन में बराबर चहल-पहल बनी रहना जरूरी हो गया था।

× × × ×

तभी एक रात—

दक्खिन का मुग़ल सूबेदार सायस्ताखां मौज की रात काट रहा था। छत्रपति शिवाजी के पूना के लाल-महल में उसका पूरा हरम लगा हुआ था।

उसके सोने के कमरे के बाहर अंगरक्षकों की क़तारे लगी हुयी थीं। इनके पीछे हबशी ग़ुलाम छोटी-छोटी कटारें लिये पहरा दे रहे थे और

उनके पीछे दासियाँ घिरी हुयी थीं। बहुतेरे नौकर-चाकर भी घिरे हुये थे।

उस बाहरी घेरे के और आगे महल के पहरेदार सतर्कता से पहरा दे रहे थे तथा दूर तक दाहिने बायें और सामने पन्दरह हज़ार मुग़ल फौज छायी हुयी थी जिनमें अबीसीनिया के सिपाही भी थे और राजपूत भी; पठान थे तो पंजाबी भी।

लाल-महल के चारों ओर पहरेदार घिरे हुये थे। बगीचे में और सामने की ओर मनसबदारों और दूसरे सरदारों के कैम्प पड़े हुये थे। सिंहगढ़ की तरफ दक्खिन की ओर दूसरे मनसबदारों और महाराजा जसवन्तसिंह का कैम्प कम से कम दस हजार सैनिकों को घेर कर पड़ा हुआ था। पूना एक प्रकार से पराधीनता के पहरे में जकड़ा हुआ था।

तभी पचीस सौ जवानों को लेकर शिवा राजा पूना की ओर बढ़ चले। एक भारी काम था : टेढी खीर थी। हिम्मत वालों का ही काम था। वह हिम्मत शिवाजी में ही थी।

और उनके वे दो रण-बाँकुरे सिपहसालार—नेता जी पलकर एवं मोरो पन्त जीवट के लोग थे वे, एक से एक इक्कीस-पच्चीस। जैसे दुश्मन का नाम सुनकर ही उनके घोड़े स्वतः हिनहिनाने लगते थे। और दुश्मन को देखकर तो जैसे उनके रग-रग का खून चक्कर खाने लगता था।

नेताजी पलकर एवं मोरो पन्त पेशवा को लेकर छत्रपति शिवाजी पूना की ओर बढ गये।

"नेताजी ! सामने पश्चिम की ओर मुग़ल कैम्प से आगे, सौ गज……।"

और नेताजी के घुड़सवार चल दिये।

"मोरोजी ! दाहिनी ओर। उत्तर की ओर कैम्प के आगे दो सो गज पर……।

"ठीक।"

ग्रौर मोरो जी पेशवा भी अपनी सेना लेकर उस दिशा की ओर चल दिया।

× × × ×

आज रमज़ान का छठा दिन था। दिन भर ही व्रत-उपवास रहा था। धर्म-कर्म के बाद शाम की नमाज़ हुये देर हो चुकी थी। रात अँधियारी का घूंघट ओढ़े हुये थी। खाना भरपेट खाया गया था तभी लोगों को खूब सुस्ती ने घेर लिया था।

खानसामे अभी जाग रहे थे। वे अपने तंदूर के आगे अभी जमुहाइयाँ भर कर सोने की तैयारी में थे। ये खानसामे जिस कमरे में थे उसके बाद एक और कमरा था जिसमे भी सायस्ता खां के कुछ अंग रक्षक मौजूद थे।

और एक ताज्जुब—

मराठे इस कमरे तक आ पहुँचे। विना शोर के उन्होंने इन खानसामों को मौत के घाट उतार दिया।

लाल-महल में जिस तरह और बहुत-सी अदल-वदल हुयी थी उसमें एक यह भी था कि इस रसोई और उस आगे वाले कमरे के बाद जो सोने का कमरा था। (वही साइस्ता खां के सोने का कमरा था;) उस को पर्दा करने के लिये दोनों के बीच ईंटों की एक दीवाल बना दी गयी थी।

मराठे सैनिकों ने इस नई दीवाल की ईंटों को एक-एक करके निकाला और वहाँ एक रास्ता बनाया।

शिवाजी और उनका परम विश्वासी चिमना बापूजी—दो ने सबसे पहले साइस्तखां के हरम में क़दम रक्खा। उनके पीछे दो सौ मराठे जीवन को होम कर देने के लिये पीछे थे।

अब क्या था। भीत कपोती सी उन नाज़नीनों ने तलवार के खुले हाथों को देखा। वे सहम कर इधर-उधर भागीं। घबड़ा कर उन्होंने खान को पुकारा और खान अपना कोई हथियार इस्तेमाल कर सके उसके

पहले ही शिवाजी उस पर उछल पड़े। एक बार में उसके हाथ का अंगूठा गायब था। दूसरा वार उठा का उठा रह गया और किसी औरत के मुलायम हाथों ने कमरे की बत्ती बुझा दी। शिवाजी की तलवार का हाथ हवा में सर्रा कर रह गया और पलक झपने की जल्दी में खान पीछे को सरक गया।

दोनों मराठे पानी के कुंड में तैरने उतराने लगे और अँधेरे में थोड़ी देर तक मार-काट करते रहे।

साइस्ता खां को घेरे रहने वाली वे गुलाम छोकरियाँ किसी तरह उसे बचाकर सुरक्षित स्थान पर ले जाना चाहती थीं और उसमें वे सफल हो गयीं।

जो दो सौ मराठे बाहर रह गये थे उन्होंने महल में जैसे अपना राज्य स्थापित कर लिया। उनकी पोशाकें भी कुछ मुग़ल सेना से मिलती-जुलती थीं। पहरेदारों को लातें मार-मार कर उन्होंने जगाया :

"गधों ! ऐसे ही पहरा दिया जाता है।"

हड़बड़ा कर पहरेदार उठ बैठे।

तब ये मराठे बैंड वालों के कैम्प में गये और ऐसे हुक्म दिया जैसे खान दे रहा हो :

"ऐ ! बजाओ बैंड।"

और बैंड बजने लगा। उस शोर-ग़ुल और ढोल-तासों की चीख-चिल्लाहटों के बीच दुश्मन की पुकारें और चीखें दब गयीं।

इस तरह सबको जगाकर शिवाजी अपने मराठे सरदारों को लेकर सामने के दरवाजे से सुरक्षित बाहर निकल गये।

इस झपेट में केवल छः आदमी शिवाजी के मारे गये और चालीस घायल हुये जबकि दूसरी ओर साइस्ता खाँ का एक लड़का और एक सेनापति मारा गया, चालीस नौकर-चाकर, छः बीबियाँ या ग़ुलाम लौंडियाँ मारी गयीं तथा साइस्ताखां खुद, उसके दो लड़के और आठ दूसरी औरतें घायल हुयीं।

इसके बदले साइस्ताखां को दक्खिन की सूबेदारी छिन जाने का इनाम मिला क्योंकि शहंशाह ने सब क़सूर उसकी लापरवाही पर लगा दिया।

और—

छत्रपति शिवाजी को सब तरफ से यश व सम्मान प्राप्त हुआ।

× × × ×

औरङ्गाबाद में सूबेदारों की बदली की कार्यवाही हो रही थी। साइस्ता खां को बदलकर बंगाल जाने का हुक्म हुआ और उसकी जगह जयसिंह भेजा गया था।

उधर शिवाराजा अपने लाल-महल में कमाल दिखा कर सूरत की ओर घोड़ा दौड़ाते चले जा रहे थे। लाल-महल का एक-एक कोना उन का देखा-समझा था। इसलिये साइस्ताखां को सबक देने में उन्हें अधिक कठिनाई भी नहीं हुयी।

सूरत मुग़लों का सबसे मशहूर नगर था उसके चारों ओर जिस तरह सरहद की दीवार नहीं थी उसी तरह उसकी सम्पदा की भी कोई दीवार या थाह नहीं थी।

बारह लाख रुपये साल केवल रियासत की मालगुजारी निकलती थी।

तीन दिन तक मराठों ने सूरत की लूट की और करोड़ों की सम्पत्ति वे ढो ले गये।

सर्वत्र त्राहि-त्राहि मची हुयी थी।

औरङ्गजेब ने सुना। साइस्ता खां की बेइज्जती और सूरत की लूट से वह बौखला गया।

शाहज़ादा मुअज्जम उन दिनों औरङ्गाबाद में मौज-पानी तथा शिकार में मस्त था किन्तु औरङ्गजेब ने जयसिंह और दिलेरखां नामक दो चुने हुये सेनापतियों को शिवाजी की सँभाल के लिये भेजा।

परन्तु शिवा जो बिगाड़ चुके थे उनकी नज़र में वह सँभलना कठिन था और शिवा जो सँभाल चुके थे उसका यों बिगड़ना आसान नहीं था।

: २८ :

जुनार के पास मुग़ल सरहद पर मुग़ल फौजों की सरगर्मी बढ़ी हुयी थी। पूना और लोहगढ़ में अधाधुन्ध सेनायें बढ़ा दी गयीं और ससवाद को मुख्य कार्यस्थल बनाया गया था।

और पुरन्दर पर चढ़ाई शुरू हो गयी।

तभी एक दिन सुबह होकर चुकी थी। नौ बज रहा होगा। पुरन्दर क़िले के नीचे जयसिंह अपना दरबार बिछाये बैठा था। तुर्की, पठान, मुग़ल, राजपूत तथा दूसरे सरदार इधर-उधर बैठे थे। कुछ खड़े थे। तभी एक मुगल सरदार ने आगे बढ़ कर कहा :

"हज़ूरे आला ! मराठों की एक टुकड़ी किले में घुस गयी है। शुभकर्न बुन्देला हमारा कुछ काम नहीं कर रहा है। वह हर सूरत मे शिवा राजा की मदद देने पर तुला हुआ है।"

यह सुनते-सुनते सभी नज़रें और कान सामने घूम गये। आवाज़ आई :

"छत्रपति शिवाजी महाराज की जय।"

मुग़ल कैम्प में छत्रपति शिवाजी की जय—ताज्जुब की बात थी। तभी सामने से एक मुस्कराता सा—नाटा सा मराठा जवान—तलवार कमर में बांधे, मुग़लिया सरदारों की सी दाढ़ी बढ़ाये, गोरा—चिट्टा,

माथे पर रोली का गोल टीका लगाये मराठे सरदारों की सी पगड़ीनुमा साफा बाँधे सामने आया।

जयसिंह अपने आसन से उठकर खड़ा हो गया। उसने हाथ जोड़े और बोला :

"आइये! शिवाजी महाराज पधारिये।"

उपस्थित सभी लोग चौंक रहे थे। बहुतों ने तो क्या लगभग सभी ने शिवा राजा के प्रथम बार दर्शन किये थे।

जयसिंह ने उनका यथोचित सत्कार किया और तब सन्धिपत्र तैयार किया जाने लगा।

सब कुछ तय हो गया। शिवाराजा ने अपने तेईस क़िले मुग़लों को सुपुर्द करना मान लिया। पुत्र शम्भू जी को पांज हज़ार का मनसबदार बना कर दिल्ली दरबार में भी भेजना तय कर लिया किन्तु एक शर्त रक्खी कि वे कभी भी शहंशाह के सामने नही जायेंगे।

छत्रपति शिवाराजा औरङ्गजेब के दरबार में जाने से डरते थे; ऐसी बात नहीं थी परन्तु वे जानबूझ कर किसी विदेशी शहंशाह के नाम पर हकूमत के आगे सर नहीं झुकाना चाहते थे।

"शिवा राजा! आपको बेहद इज़्ज़त मिलेगी—बेहद इज़्ज़त। औरङ्गजेब आपकी बहुत ख़ातिर करेगा।"

"परन्तु मैं नहीं जाऊँगा।"

"आप डरते क्यों हैं—मैं भगवान् की क़सम खाता हूँ, मैं राम-रहीम की कसम खाता हूँ, मैं शिव-पार्वती की क़सम खाता हूँ, मैं बजरंग बली की क़सम खाता हूँ, मैं काली माई की क़सम खाता हूँ, मैं गंगा माई की क़सम खाता हूँ, मैं सच कहता हूँ, आपको कोई खतरा न होगा। आप औरङ्गजेब के दरबार में जाइये तो," जयसिंह कहता गया किन्तु मन ही मन उसका छलिया मन कहता गया मैं शाह से वादा कर आया हूँ कि किसी भी दशा में शिवा राजा को दरबार में ज़रूर भेजूँगा।

× × ×

दरबार में शिवाजी बैठे-बैठे उछल पड़े :

"रार्मसिह ! क्या कहा—मेरा सम्मान दीवाने-आम में बैठाल कर पाँच-हजारी मनसबदारों के बीच में ?"

कुमार रामसिंह चुप था। उसका दम सूख रहा था। उसे लग रहा था—दीवाने ग्राम में अभी तूफान मचने वाला है। वह कुछ कहे—उसके पहले ही शिवाजी ने फिर कहा :

"रामसिंह ! तुम्हें मालूम है मेरा सात साल का लड़का पाँच-ह़ज़ारी मनसबदारों का ओहदा पाने लायक हो गया था।

शिवाजी ने यह बात इतनी जोर से कही थी कि ग्रासपास बैठे मन सबदारों में जैसे खलबली मच गयी।

"मेरा नौकर नेताजी पाँच-हजारी मनसबदार है, कुमार रामसिंह। मैं यह बेइज्जती बरदास्त नहीं कर सकता। सुनते हो।"

ग्रौर रामसिंह शिवाजी के हाथ जोड़े खड़ा था। वह कह रहा था :

"छत्रपति महाराज ! मैं हाथ जोड़ता हूँ। पैर पड़ता हूँ। गलती मेरी ही है। ग्राज दरबार का वक्त हो चुका था। ग्रापको ठीक जगह नहीं मिल पाई। ग्रापके लिये दूसरी जगह तय थी। आपको बाक़ायदा सलामियाँ देकर दरबार में भी लाया जाना था।......आप" कहते-कहते रामसिंह ने नज़र फेरी। उसने देखा उस खलबली की ख़बर शहंशाह के कानों तक जा चुकी है। क्योंकि शिवा राजा इतनी ज़ोर-ज़ोर से बोल रहे थे कि समूचा दरबार सुन रहा था। उन्होंने रामसिंह को बुलवाया।

शिवाराजा अपने पुत्र शम्भूजी के साथ ग्रभी-ग्रभी शहंशाहे मुग़लिया औरङ्गजेब के सामने से होकर ऐसे स्थान पर लाकर बैठाल दिये गये थे जहाँ बैठना वे ग्रपना बहुत बड़ा ग्रपमान समझते थे।

पन्द्रह सौ सोने की मुद्रायें नजर के रूप में ग्रौर छः हजार रुपया निसार के रूप में उन्होंने शहंशाह के सामने पेश किया था।

उनके आते ही शाह ने बहुत खुश होकर पुकारा था :

"ग्राइये ! आइये ! शिवाजी राजा...!"

ग्रौर कुमार रामसिंह ने अधिक प्रभावपूर्ण शब्दों में शिवा राजा का परिचय समूचे दरबार को दिया था।

औरङ्गजेब उस दिन बहुत खुश भी था। ग्रागरे क़िले में उसकी सालगिरह मनाई जाने वाली थी जिसके लिये वह पहली बार दिल्ली से आगरे ग्राया था। वह अपनी सालगिरह बड़ी शानोशौक़त से मनाने की तैयारियाँ कर रहा था। सारी दुनिया को ग्रपना रुतबा दिखाने के लिए उसने आगरे के क़िले को हाथियों, हाथियों की सोने चाँदी की अम्बारियों; घोड़ो, घोड़ों के सोने-चाँदी के साज़ों; ऊँटों, ऊँटों के सोने के हौदों; तोपों, तोपों को मखमली चादरों से पाट दिया था। उसका जो ख़जाना दिल्ली से आगरे लाया गया था उसे चौदह सौ बड़ी ख़च्चर गाड़ियों में लादकर लाया गया था। सोने की मोहरों, ग्रशर्फियों; जवाहरात से आगरे का किला पाट दिया गया था। सब तरफ रंगीन झंडे, पर्दे, झालरें फरफरा रही थीं।

दूर-दूर से राजे-रजवाड़े, लाखों-करोड़ों की सम्पदा लेकर ग्रौरङ्गजेब की सालगिरह पर भेंट करने के लिये आगरे ग्राये थे।

तमाम फौजें ग्रागरे के क़िले में सालगिरह की सलामी देने के लिए इकट्ठी हुयी थीं। इनमें तुर्कों के सिपाही भी थे ग्रौर पठान भी। राजपूत भी और दूसरे हिन्दूस्तानी सैनिक भी। इनकी ग्रलग-अलग पोशाकें जैसे क़िले भर में छायी हुयी थीं।

तुर्किस्तान के ग्रक्खड़ जवान नीले पाजामों पर पीले चुस्त कुर्ते पहने हुए थे और उन पर हरे रंग की जाकट चढ़ाये हुए थे। इनके काली टोपी पर फरफराते हरे तुर्रे ग्रौर उन पर चमकता चाँदतारा टेढ़ा होकर बड़ी नोक से चमक रहा था।

पठानों की सफेद सलवारों पर चुस्त बाहों के बहुत ढीले कुर्ते और उन पर बादामी जाकटें दूर से चमकती थीं। इनकी टोपियाँ हरी ग्रौर उन पर कसे सफेद साफे बड़ा मजा पैदा कर रहे थे। इनकी कमर की पेटियों पर दो-दो और तीन-तीन छोटी बड़ी कटारें ग्रौर तलवारें झूलती

थीं। इनकी टेढ़ी मूछों और भारी-भारी चेहरों को देखकर दैत्य की शकल याद आ जाती थी।

और वे राजपूत रण-बांकुरे लड़ने में तेज किन्तु बुद्धि एवं भाग्य से हीन अपनी अलग ही छटा झलकाये घूम रहे थे। इनको कुछ लोभ था या ये ऐसे सरदारों और मनसबदारों की लपेट में थे जो बे-बात इनका गला कटवा देते थे और इनकी आत्मा को पीसकर इनको अपने ही भाइयों के विरुद्ध भिड़ाते रहते थे। इनके रुआब-ठाठ किसी भी दूसरे सैनिकों से कम नहीं थे। इनकी कमर के पीछे बँधी ढालें और सर पर बँधे साफे किसी भी वार को सहने की शक्ति रखते थे और हाथ के भाले किसी के भी सीने बेध देते थे परन्तु ये ऐसी सेना के सैनिक थे जिसमें रहकर ये अपनी तलवार से अपनों ही का गला उतार लेते थे।

किन्तु मराठे जिनके लिए जयसिंह ने बहुत चेष्टा की कि शिवाराजा से छोड़कर मुगल सेना में भरती कर लें लेकिन वह ढूँढ़-ढूँढ़ कर थक गया। हाँ, उसे मिले; किन्तु केवल दो। ऐसे तो करोड़ों की जनसंख्या में हज़ार-दो हज़ार वर्ष में कुदरत भी ऐसे पैदा कर देती है जिन बच्चों के आदमी के सर नहीं सींगदार गाय के बच्चों के सर होते हैं।

तो, रामसिंह ने शाह से शिवाराजा के बिगड़ने का कारण बताया कि गलती से उन्हें पाँच-हज़ारी मनसबदारों में जगह दे दी गयी है।

"शहंशाहे आला! आप शिवाजी को देखने के बाद किसी और काम में फँस गए और शिवाजी राजा को ठीक जगह नहीं बैठाया गया" शाह के प्रश्न का उत्तर देते हुए रामसिंह ने कहा।

"कुमार रामसिंह! शिवाजी राजा को तसल्ली दो। जाओ चुप करो", शाह ने बहुत अपनेपन से कहा।

और रामसिंह यह भी नहीं जानता था कि यहीं इसी दरबार में एक चिक के पीछे दो आँखे ऐसी हैं जो बहुत बारीकी से शिवा राजा को देख रही हैं। उनके गोरे रूप पर लगी लाल टिकुली को बड़ी तिरछी

नज़रों से झांक रही हैं। उसके ओठों की मुस्कान उसे बड़ी लुभावनी लग रही है। उनका तन्दुरुस्त शरीर उसे भा रहा है।

रामसिंह बेचारा घबड़ाहट में फिर शिवा राजा के पास पहुँचा। उसके ओठों से कुछ शब्द बाहर आवें कि उसके पहले ही शिवाजी दमक पड़े :

"यह मेरे सामने कौन खड़ा है ? यह किसकी पीठ है ?......"

रामसिंह ने मुड़कर झांका और धीरे से कहा :

"महाराजा जसवन्तसिंह !"

"ओ : जसवन्त। वह डरपोक, भगोड़ा जसवन्त जो रणक्षेत्र में मेरे सिपाहियों को पीठ दिखा आया है यहाँ भी मुझे पीठ दिखा रहा है", शिवा राजा ने दाँत किटकिटा कर कहा।

"छत्रपति महाराज ! आप शान्त हो जाइये। शहंशाह ने खुद कहलाया है। जो ग़लती हो गयी है उसे आगे सुधार दिया जाएगा।

"इस शर्म से तो आत्महत्या कर लेना ज़्यादा अच्छा है, रामसिंह", कहते-कहते अत्यधिक उत्तेजना में शिवा राजा एक ओर को लुढ़क गए।

दरबार में खलबली मच गई। आगरे क़िले के दीवाने-आम में औरङ्गजेब का पूरा दरबार सजा हुआ था। बड़े से लेकर छोटे तक सिपहसालार, मनसबदार, हाकिम, हुक्काम डरे हुये थे। सभी इधर-उधर देखने लगे।

औरंगजेब ने बहुत धीमे से पूछा :

"इस पहाड़ी चूहे को क्या हुआ ?"

शाहे मुग़लिया की अपनी इस डरी बात का कोई उत्तर दे उसके पहले ही रामसिंह ने आकर कहा :

'शेर जंगल का रहने वाला है। उसे इस घुच-पुच में परेशानी हो रही है। वह बीमार हो गया है। मैं उनकी ओर से उनकी किसी भी बदइखलाकी की माफी माँगता हूँ—शहंशाहे आला !"

"कोई बात नहीं। कोई बात नहीं। शिवा राजा को हटाकर बराबर वाले कमरे में लिटाया जाए। उन पर गुलाबजल छिड़को रामसिंह! जाओ। शिवा राजा के पास जाओ।...उन्हें इस तपिश से हटाओ", औरंगजेब ने उस समय बड़े सज्जनतापूर्ण शब्दों में कहा—"सुनो! ठीक होने पर उन्हें फौरन उनके डेरे पर पहुँचाओ। दरबार खत्म होने तक उनको रुकने की ज़रूरत नहीं है"—शहंशाह ने जोड़ दिया।

वे आँखें इस समय भी शिवा राजा पर टकटकी बाँधे थीं।

तब शिवा राजा को वहाँ उस मकान में पहुँचा दिया गया जहाँ शिवा राजा के हाथी, पालकियाँ, घुड़सवार व ऊँट गाड़ियाँ इकट्ठी थीं। वहीं वे ठहराए गये थे।

शाही पोशाक या खिलत पहने शम्भू जी बड़ा सुघर लग रहा था। शिवा राजा की ख़िलत न पहनने के कारण दरबार में ही रह गयी थी कारण पहले तो हड़बड़ी में शिवा राजा को खिलत मिल नहीं पाई फिर शिवा राजा ने आवेश की उस उत्तेजना में उसको पहना नहीं।

शिवा राजा कुमार रामसिंह के महल में क़िले से दूर ठहरे हुये थे। कुमार रामसिंह के पिता जयसिंह ने रामसिंह को विशेष आदेश दिए थे कि आगरे में शिवा राजा के ठहरने तक उनके सत्कार और सम्मान में कोई कमी न हो।

घर आकर शिवा राजा औरंगजेब पर और बिगड़े तथा रामसिंह से कहा:

"यह मेरे साथ सरासर धोखा है। मुझसे साफ कहा गया था कि आपको दरबार में बराबरी के पद पर ले जाया जावेगा। वहाँ आपको यह अनुभव नहीं होगा कि शहंशाहे मुग़लिया मराठा छत्रपति से कोई ऊँची चीज़ है।......उफ़! मेरी इतनी बेइज्जती...। शिवा का इतना अपमान...और उसने सहन कर लिया।"

कुमार रामसिंह की दशा विचित्र थी। वह समझ ही न पा रहा था कि क्या करे? दोनों ओर से उसकी परेशानी बराबर थी। न वह

शिवा राजा का अपमान देखना चाहता था न ही शाह के विरुद्ध कुछ कर देख सकता था। इस पर उसके पिता जयसिंह ने बहुत तरह से लिख दिया था कि वह राजपूत की बात की बात है कि शिवा राजा को कोई परेशानी न हो।

गरमी की यात्रा से वास्तव में छत्रपति शिवाजी की तबियत बिगड़ गयी थी। माथे के दर्द और रक्त की उत्तेजना में वे अपने डेरे पर चुपचाप लेटे रहे।

× × ×

मुग़ल दरबार भी अजीब खिचड़ी की बटलोई थी जिसमें जो चीज़ पड़ती वह पकने लगती थी। इस समय भी शिवा राजा के प्रश्न को लेकर औरंगजेब के दरबार में खिचड़ी पकनी शुरू हो गयी थी।

पिछले दिन शिवा राजा के उस नाटक को देखकर दरबारी तरह-तरह की साजिशें उड़ा रहे थे। दरबार में शिवा राजा के विरुद्ध काफी मसाला तैयार था। ढेर में केवल लौ छूने की देर भर थी। शिवा राजा ने भरे दरबार में कहा था :

"यह जसवन्त ! जिसकी पीठ मेरी सेना ने देखी है।"

महाराज जसवन्तसिंह को उत्तेजित करने को काफी थी। उससे औरंगजेब को उकसाया जा रहा था।

शिवा राजा ने सूरत को लूटा था जिसकी मालगुजारी ठेठ शहंशाह की बहन जहाँआरा को मिलती थी और जो उस लूट के बाद नहीं आ रही थी। इस कारण जहाँआरा ने अपने भाई शहंशाहे मुगलिया को दरबार में ठीक तरह से भरा।

दूसरे पूना के लाल महल में साइस्ता खाँ के हरम पर शिवाजी ने जो चोट पहुँचाई थी उसकी भी फुलझड़ी उड़ाने के लिए एक मसाला तैयार था। वजीरे आला जफ़र खाँ की बीबी साइस्तखाँ की बहन थी जो बहुत जोर-शोर से वजीर को भड़का रही थी कि ऐसा मौका कब

हाथ लगेगा ? जब दुश्मन अपनी देहलीच पर आ गया है तो उसे ढूँढ़ने कहाँ जाना ?

इसके अतिरिक्त शिवा औरंगजेब भेंट की सरगर्मी का पूरा श्रेय जयसिंह और उसके बेटे कुमार रामसिंह को था इस कारण वे कोई तोहफा न मार ले जायँ इसलिये जलने वाले दरबारियों और कुछेक जयसिंह के प्रतिद्वन्द्वियों ने जिनमें राजा जसवन्तसिंह भी था—औरंगजेब को तैयार कर लिया कि या तो आगरे में ही शिवा राजा का काम तमाम कर दिया जाये या कैदख़ाने में सड़ा डाला जाये।

× × × ×

शिवाराजा एवं शम्भूजी इस समय दोहरे कैदख़ाने में थे। बहुत गहराई में रामसिंह के सिपाही शिवा राजा के जीवन की रक्षा कर रहे थे कि किसी गुप्त षड़यन्त्र के द्वारा उनकी हत्या न कर दी जावे। क्योंकि उसके पिता और उसके स्वयं के वचन पर ही शिवा राजा आगरे आये थे।

और रदान्दाज ख़ाँ के मकान पर शिवा राजा की कड़ी नजरबन्दी के बाहर सिद्दी फुलाद की हथियार बन्द पुलिस पड़ी हुयी थी जो शिवा को भागने से रोक रही थी।

: २९ :

"अंजुमन ! यह कोई ज़रूरी नही है कि मोहब्बत में किसी बात की ख्वाहिश की जाये।"

"वाह शहज़ादी ! इतने ऊँचे से बोलोगी ! मोहब्बत और वह भी मुलाकात से खाली...वाह ! वाह ! ऐसी मोहब्बत करने वालों से तो सूखे पेड़ अच्छे।"

"अपना-अपना खयाल है अंजुमन ! पाकीदा मोहब्बत का मजा यह है कि सामने वाला जाने भी नही और हम रस में सराबोर हो रहे हैं। सूखे पेड़ नहीं—रसमें इतने सराबोर कि....बस क्या बताऊँ"—कहते हुये शहज़ादी जीनतुन्निसा ने अपनी निजी बाँदी अंजुमन की मीठी चुम्मी ले ली। वह कह भी गयी—"अंजुमन ! मज़ा वह है कि कोई जाने नहीं। चाह में चाह पैदा कर ली तो बेलुत्फी आ के रहेगी। समझी।'

"लेकिन ! वाह री तेरी मोहब्बत ! दरबार में जो भी परदेशी आयेगा तू उसी पर यों रीझ जायेगी तो फिर..."

"अंजुमन ! मोहब्बत को इतने हलके से मत ले, रानी। वह नज़र उठती ही बस एक पर है। बाकी तो सब बकवास है। धोखा। धोखा। धोखा।"

× × ×

और वह नजर उस क़ैदखाने की तंग दीवालों पर पड़ रही थी जहाँ शिवा राजा बन्द थे।

ख़ास मौका निकालकर शहज़ादी जीनतुन्निसा उस मकान के उस कमरे के बाहर तक गयी जहाँ शिवा राजा उस समय शिवाभवानी की पूजा में लीन थे।

जिन नज़रों ने दरबार में बड़ी बारीकी से देखा था वे नजरें शहंशाहे मुग़लिया औरंगजेब की शहज़ादी जीनतुन्निसा की उन कजरारी पुतलियों में समाई हुई थीं जो अंजुमन के साथ अपनी दस-पाँच लौंडियों को लेकर शिवा राजा की तलाश में टहल रही थी।

वह पहली नज़र थी जिसने शिवा राजा को अपने दिल के महल में बिठा लिया था और शिवा राजा का वह बाँकपन, तिरछी अदा उस पर शहंशाह से बातचीत की उस तेजी-तर्रारी को देखकर शहज़ादी जीनतुन्निसा उन पर बेदाम लुट गयी थी।

और शिवा राजा को क्या ख़बर ?

× × × ×

"हुज़ूर ! शाहज़ादी जीनतुन्निसा पूछती हैं कि काबुल भेजे जाने का जो हुक्म सादिर हुआ है वह किसके पास है ?"

"वज़ीरे आला जफर खाँ के पास", शिवाराजा ने उत्तर दिया।

"बहुत अच्छा", कहकर और सलाम बजाकर अंजुमन चली गयी।

शहज़ादी की दिलचस्पी को शिवा राजा ऐसे चतुर खिलाड़ी न जान-समझ सकें यह कैसे सम्भव था इस कारण उन्होंने शहजादी जीनतुन्निसा की उस दिलचस्पी का लाभ उठाना चाहा। वह सिलसिला चला। शहज़ादी की खास बाँदी अंजुमन अक्सर शिवा राजा के पास आती, फल फूल, मेवा, मिठाइयाँ लाती, हाल-चाल पूछ जाती—कभी नई दरख़्वास्त ले जाती और हर बात दरबार से पूरी करा कर ख़बरें चुपचाप दे जाती।

शिवा राजा और कुंवर रामसिंह के लिए हुक्म दे दिया गया था कि अफ़रीदियों के दबाने के लिये दोनों काबुल रवाना हों। उनके साथ मुग़ल फौज भी जा रही थी। शिवाजी ने सोच रक्खा था कि काबुल उनका जीवित लौटना असम्भव होगा किन्तु उनकी खुशकिस्मती कि उस क़ैद खाने में भी उनका एक रक्षक निकल आया जो अजीब बंदिश में पड़ कर उनकी मदद करने को उतावला हो रहा था।

और औरङ्गजेब ने उस हुक्म को रद्द किया जिसके मुताबिक शिवा राजा को काबुल जाना था।

× × ×

"यह क्या बात है, वजीरे आला ! शहंशाह शिवा पर बहुत मेहर-बान हैं ?"

"मैं खुद हैरान हूं महाराजा साहब ! उस दिन शिवा और रामसिंह का काबुल जाना रुक गया और आज देखिये ! ताज्जुब है, महाराजा साहब ताज्जुब ! उस मामूली मराठे भूमिया की फौज का एक-एक सिपाही सही सलामत घर वापस भेज दिया गया। एक हब्बे भर किसी पर कोई सख्ती नहीं बरती गयी। सब सामान, हाथी, घोडे, ऊँट, पाल-कियां और सिपाही वापस"—राजा जसवन्तसिंह को उत्तर देते हुये मुग़ल दरबार के मुख्य वज़ीर जफर खाँ ने कहा।

"इतना ही क्यों, मैंने सुना है रदन्दाज़ के यहाँ पहरा भी हलका करने का हुक्म हो गया है", राजा जसवन्तसिंह ने कहा।

"क्या कहा ? पहरा हलका हो रहा है तो किसी दिन वह भाग भी जायेगा। बहुत चिलबिला है वह मराठा। उससे तो उसका लड़का खामोश है।"

"लेकिन वज़ीरे आला यह मामला क्या है कि शहंशाह इतने मेहर-बान हैं ?"

"यों शहँशाह मेहरबान तो शुरू से ही हैं लेकिन न जाने मामला क्या है कि शिवा की दरखास्तों पर हुक्म करके वे मेरे हाथ में देते हैं

बजाये इसके कि मैं उनके सामने कागज़ पेश करूँ।"

"क्या कहा, वज़ीरे आला ! क्या इसकी तल में कोई गहरा आदमी है ?"

"आदमी कौन हो सकता है ? लेकिन कोई बात ज़रूर है", वज़ीर ने कहा।

यह जो बात दीवाने-खास में बैठकर अकेले में वज़ीर आला जफर खां और राजा जसवन्तसिंह में हो रही थी उसकी झलक शिवा राजा के क़ैद खाने के चारों ओर भी थी।

क़ैदखाने की पुलिस का ओहदेदार ज़ालिम सिद्दी फुलाद एक दिन शहज़ादी जीनतुन्निसा की बांदी अंजुमन से कहने लगा :

"सुनती है लौंडी। आते वक्त कल अगर सौ दीनार साथ न लाई तो शहज़ादी की सारी पौल शहंशाह से कह दूंगा।"

"ले मुये ! कहेगा क्या, मैं आज ही लाई हूं", कहते हुये अंजुमन ने अपनी चुन्नी में छिपी दीनारों की पोटली सिद्दी फौलाद की ओर बढ़ा दी।

× × ×

शिवा राजा शहज़ादी जीनतुन्निसा की दिलचस्पी पर बेहद हँसे। वे उसकी खिल्ली उड़ाते। परन्तु औरङ्गज़ेब की उस हरक़त पर वे दाँत किटकिटा-किटकिटा कर रह जाते थे।

इस पर भी उस सब का दोष वे अपने को देते थे। वे शम्भूजी से कहते :

"बेटा ! ग़लती मेरी है। मैं ऐसे फंदे में आया ही क्यों ? मैंने जय सिंह से बात ही क्यों की ? समझौता ही क्यों किया ? अपने तेईस क़िले दिये ही क्यों ? मैं आगरे आया ही क्यों ? होता क्या ? ज्यादा से ज्यादा पिस जाता —मिट जाता लेकिन राणा प्रताप की तरह अपनी शान अपने हाथ में रखकर ही मौत को बुलाता।···शम्भूजी आगे अपने जीवन में इन घटनाओं से सबक लेना।"

और शिवा राजा दिन-रात पूजा-पाठ करते रहते। शिवा भवानी का मनन करते।

× × ×

दूर की आँच सेंकते-सेंकते शहज़ादी जीनतुन्निसा के मन की तपिस बढ़ती गयी :

"अंजुमन ! कुछ भी हो जंगल के इस शेर को मैं पिंजड़े में नहीं देख सकती—नहीं देख सकती।"

"क्या मतलब ?"

"मैं उसे क़ैद से छुटकारा दिलाऊँगी।"

"अपना शिकार अपने आप उड़ा दोगी।"

"उससे क्या होता है। एक याद तो जिगर में रह जायेगी।[1] वह तो बहुत है—सब कुछ है। मैं उस पाक़-मोहब्बत का चराग़ दिन-रात रौशन किये रहूंगी। तुझे क्या पता कितना मज़ा आयेगा उस सब में ?"

"जैसे तुम्हें सब पता ही है शहज़ादी ?···तुम्हें कहाँ से पता ?"

"इसका पता कोई देता है ? ये सब अपने आप दिल में रम जाती हैं···। लेकिन मैं उस दक्खिन के शेर को यहाँ से हटाऊँगी · ज़रूर हटा-

---

[1] इस घटना के बाद शहज़ादी जीनतुन्निसा ने जीवन भर शादी नहीं की और पाक-ज़िन्दगी बिताई। यही नहीं, शिवाजी का एक पौत्र जिसका नाम भी शिवाजी था एक बार मुग़लों के द्वारा पकड़ लिया गया। तब औरङ्गज़ेब ने हुक्म दिया कि उसका धर्म परिवर्तन कर दिया जाये। शिवाजी के बाबा शिवाजी के नाम की माला जपने वाली शहज़ादी जीनतुन्निसा का औरङ्गज़ेब पर बहुत प्रभाव था। शिवाजी की याद उसके दिल पर हर समय ताज़ा रहती थी। वह औरंगज़ेब के पैरों पर गिर पड़ी और उसने कहा कि उस मासूम बच्चेकी धार्मिक मान्यताओं पर चोट न पहुंचाई जाये। औरंगज़ेब ने जीनतुन्निसा की बात मानी और लड़के को छोड़ दिया।

ऊँगी''—शहज़ादी जीनतुन्निसा कहते-कहते कहीं सूने में दृष्टि गड़ा कर बैठी रही।

अंजुमन शहज़ादी के बालों में गुलाब का सेन्ट मल रही थी।

वे दोनों सखियों के रूप में ही एक दूसरे से व्यवहार करती थीं और बचपन की साथिनें थी। अंजुमन शाहज़ादी के लिये बड़ी सहानुभूति रखती थी। इस समय दोनों ही आगरे क़िले के ज़नाने महल की ऊपर की छत के एक कोने में बैठी सामने के ताज़ का सुहाना दृश्य देख रही थीं। लहराती यमुना ताज़ के किनारों को चूमती हुयी दूर तक बहती चली जा रही थी।

''अंजुमन ! देख यह जमुना ताज के उस सफेद संगमरमर को सन्नाटे में चूमती, इठलाती चली जा रही है। क्या कोई उसको देख रहा है ?···कोई नहीं। क्या संगदिल संगमरमर कुछ समझ रहा है ?··· कुछ नहीं। बस ! वह जमुना है जो जानती है कि वह किसी को अपनी लहरों से सहला रही है···उसके मीठे से चिकने मुँह को अपने प्यार से धो रही है।

अंजुमन ने देखा शहज़ादी जीनतुन्निसा पर शिवाजी की मोहब्बत का रंग काफी गहरा है।

× × ×

''पिता जी !

आपके सब पत्र मुझे यथा समय मिलते रहे हैं। आपके हृदय में शिवा-काण्ड की कितनी चोट है—मैं जानता हूं। जी चाहता है कि इसी मिनट ग़ुलामी के इस तौक़ को उतार कर फेंक दूं। आप भी फेंक दें लेकिन अब तो मेरी आपकी ज़िन्दगी का सबसे बड़ा लक्ष्य रह गया है शिवा राजा की सलामी और उसका छुटकारा।

ख़ैर, जिस बात का संकेत मैंने किया था उसकी सब तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं और उसका काम भी शुरू हो गया है। शहज़ादी जीनतुन्निसा पूरी तरह हमारा साथ दे रही है।

आप ठीक होंगे। चिन्ता न कीजियेगा। मैं यहाँ जी-जान लड़ा दूंगा।

जसवन्त ने अपनी-हमारी पुरानी रंजिश को शिवा राजा के मामले में फिर ला खड़ा किया, न।

ख़ैर, देखा जायेगा।

आपका

—रामसिंह

जयसिंह ने रामसिंह का पत्र पढ़ा और सन्तोष की सांस ली। शिवा राजा के बन्दी होने से अब वे मुग़ल सल्तनत के पूरी तरह विरोधी हो रहे थे किन्तु समय की प्रतीक्षा कर रहे थे कि अपने को उस जंजीर से मुक्त करें जिसकी जड़ सारे हिन्दोस्तान में उस समय कसी हुयी थी।

× × ×

समूचे क़िले में चर्चा फैल गयी शिवा राजा सख़्त बीमार हैं। उनके पैरों में सूजन आ गयी है। उनका पुत्र शम्भूजी रात-दिन पूजा पाठ करता रहता है। शिवाजी को वैद्य का इलाज चल रहा है। जैसा शिवाजी का सदा का नियम रहता था ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा बन्द कर देने से ही उनको इधर यह शारीरिक कष्ट हुआ है अतः उन्हें शहंशाह ने फिर दान वगैरह देने की इजाज़त दे दी है। सब ख़र्च शाही ख़जाने से हो रहा है।

अन्न, वस्त्र, मेवा, मिठाइयाँ, अशर्फियाँ, सोना, चाँदी आदि-आदि ब्राह्मणों एवं पुरोहितों को निरन्तर दिये जाने के बाद भी तबियत संभलने के स्थान पर बिगड़ती जा रही है। वैद्य के इलाज से कोई फायदा नहीं हुआ है। शाही हक़ीम भी एक बार देख चुके हैं। दो दिन उनका इलाज चला लेकिन तबियत बिगड़ती ही चली जा रही है।

इस तरह की सूचनायें चारों ओर फैली हुयी थीं। एक अच्छी चहल-पहल थी। आगरा शहर से भी कुछ ब्राह्मण हर दिन आते और दान-दक्षिणा ले जाते।

शिवा राजा जहाँ लेटे हुये थे उसके बाहर आँगन में एक बड़ी वेदी बनाई गयी थी जहाँ हवन होता था।

रदन्दाज खाँ और सिद्दी फुलाद के अतिरिक्त दूसरे सिपाही सनक रहे थे। उनके चारों तरफ इस तरह का हंगामा। लेकिन वे अपना मुँह बन्द किये थे क्योंकि शहंशाह की उस सबके लिये इजाज़त थी।

× × ×

रामसिंह—शहज़ादी साहिबा ! आप तैयार हैं।

शहज़ादी—बिलकुल···।

रामसिंह—आप सब समझ गयी हैं।

शहज़ादी—हाँ !···मैं सिद्दी फुलाद को उस वक्त अपने साथ शहंशाह के पास तक ले जाऊँगी लेकिन···।"

रामसिंह—क्या-क्या ? कहिये शहज़ादी साहिबा !

शहज़ादी—यही कि जाते वक्त तुम्हारा क़ैदी तो···कोई बात नहीं, कोई बात नहीं।

शहज़ादी कहना चाहती थी कि तुम्हारे क़ैदी को जाते वक्त आखिरी बार देख तो सकूँगी किन्तु वह कह नहीं पाई। तभी रामसिंह ने कहा :

"शहज़ादी साहिबा ! कुछ मोहरें उन डोली वालों को······।

"ज़रूर-ज़रूर ! यह लो।······रामसिंह ? आगे तक सब इन्तज़ाम है ?"

"है, शहज़ादी साहिबा !"

"तुम लोगों को कब पता चलेगा कि ख़ैरियत की जगह पहुंच हो गयी।"

"कम से कम अड़तालीस घंटों बाद।"

"उफ़ !"

एक सांस खींच कर शहज़ादी जीनतुन्निसा जनानख़ाने की ओर चल दी।

× × ×

"खफी खां ! मत देखो। जाने दो। ऐसे मिठाई बाँटने वाले झाबे आजकल यहाँ रोज जा रहे हैं। आज तुम्हारा पहला पहरा है। समझ लो--रोज़ शाम को मिठाई के ऐसे झाबे शहर में मिठाई बाँटने के लिये जाते हैं जिससे बीमार को शफ़ा मिले। समझे।"

"समझ गया दिलीर ! समझ गया।...लेकिन यह बीमार है कौन ? सुना है दक्खिन का कोई बड़ा मुख़ालिफ़ है।"

"हाँ....," दिलीर ने खफी खाँ को उत्तर दिया और बात करते झाबों की दो बँहगियाँ जिनमें आठ-आठ आदमी आगे पीछे लगे हुये थे फाटक के बाहर हो गयीं।

झुटपुटा हो चुका था जिस जगह ये बहँगियाँ उतारी गयीं वह एक बड़ा झुरमुट था जिसके चारों ओर दूर तक पेड़ों की कतारें फैली हुयी थीं।

पलक मारते शिवा राजा और शम्भूजी बँहगियों से निकले। दोनों के हाथों में नंगी तलवारें थीं। उनके कान बहुत चौकन्ने थे। बँहगी वाले भी मराठे सरदार ही थे जिनका खास इन्तज़ाम रामसिंह ने किया था।

पास ही एक पेड़ के नीचे दो घोड़े ख़ामोश खड़े थे और उस अँधेरे में वह सब कुछ देख रहे थे जो वहाँ हो रहा था।

शिवा राजा और शम्भूजी घोड़ों पर सवार होकर हवा से बातें करने लगे।

शिवा राजा ने मुड़कर भी नहीं देखा कि अभी भी किसी कोने में खड़ी एक नाज़नीन उनके घोड़े की टापों के साथ आँखें बिछाये हुये हैं।

थोड़ी दूर पर ही दो सौ मराठे नौनिहाल किसी भी गड़बड़ी का मोर्चा लेने के लिये डटे हुये थे।

शिवा राजा को रास्ता दिखाने के लिये रामसिंह एक घोड़े पर आगे-आगे जा रहा था।

वह रात शिवा राजा ने आगरे से कुछ दूर एक गाँव में काटी।

: ३० :

यह मथुरा है। यहीं कुञ्ज की गलियाँ हैं। छोटी पतली ईंटों और भारी-भारी पत्थरों की बनी सड़कें और उनसे कटकर आयी हुयी पतली गलियां घूम कर सभी यमुना के घाटों वाली सड़क पर जा मिलती हैं। यमुना के घाट से ऊपर उठकर–लगभग दस-पन्द्रह फुट ऊपर—घाट की सड़क से एक समानान्तर सड़क जाती है उस पर राधा-कृष्ण का एक विशाल मंदिर बना हुआ है। घाट और इस मंदिर के आगे वाली सड़क के बीच में मकानों की एक ठेढ़ी-मेढ़ी और लम्बी क़तार दूर—बहुत दूर तक चली गयी है जो यमुना के बाढ़ के पानी के बाँध का काम देती है। इस क़तार में मकान हैं, नीचे घाट की दूकानें हैं जिसमें स्त्रियों की साज़-सज्जा का सामान बिकता है, अनेकों धर्मशालायें हैं जिनमें घाट के पंडे दंड पेला करते हैं।

तो, इसी राधा-कृष्ण के मंदिर से एक दल साधुओं का बाहर निकला। सबकी खोपड़ियाँ घुटी हुयी और दाढ़ी-मूछें सफाचट, शरीर भर में भस्म लिपटी हुयी, माथे पर चन्दन चढ़ा हुआ, हाथों में रुद्राक्ष की मालायें घूमती हुयी, गेरुये वस्त्रों में लिपटे दल के पाँच साधु मंदिर की सीढ़ियों के नीचे उतरे। अपनी-अपनी खड़ाऊँ हाथों से उठाकर तब पैरों में डालीं और चलने लगे। केवल इन खड़ाउँओं की चाल से ही लग

रहा था कि ये नकली साधु हैं—बने हुये हैं क्योंकि मथुरा में ऐसे बने हुये साधु भी दिखायी देते हैं जो मुँड़े हुये भी होते हैं और लम्बे केश वाले भी।

बात यह थी कि इन साधुओं को इस मथुरा यात्रा के पहले निरन्तर इतनी देर तक खड़ाऊँ पहनने की आदत नहीं थी। इसी कारण खड़ाऊँ पहनने में इन्हें कष्ट हो रहा था और इनके पैर कभी-कभी डोलते हुये पड़ रहे थे।

इसी दल में वे दो भगोड़े (एक बालक) क़ैदी थे जो शहंशाहे मुग़लिया की क़ैद से भागे थे और तीन उसके साथी थे जो अपने लम्बे और ढीले-ढाले वस्त्रों के अन्दर शस्त्रो से पूरी तरह लैस थे। उन दो भगोड़ों में से एक व्यक्ति ऐसा था जो किसी की नजरें चुरा कर भागा था लेकिन खुद अलमस्त था।

टहलते हुये ये साढ़े चार आदमी मथुरा में रहने वाले मोरो पन्त पेशवा के एक सम्बन्धी को ढूंढ़ने में लग गये। ये दक्षिणी महाराष्ट्रीय अन्ततः उन्हें एक गली में मिले। कृष्णजी, काशी और विशालजी बहुत समय से उस धार्मिक नगरी मथुरा में चैन की बंशी बजा रहे थे। शिवाजी के साथियों में नीराजी इन तीनों व्यक्तियों को पहचानता था। नीराजी ने ही कृष्णाजी, काशी और विशालजी से शिवा राजा का परिचय कराया और अब तक की घटना कह सुनायी।

तीनों व्यक्ति शिवाजी के चरणों में लोट गये। उन्होंने भली प्रकार शिवाजी का सत्कार किया और उनको अपने यहाँ ठहराया।

यहाँ होने वाले निश्चय के अनुसार शम्भूजी की बाल्यावस्था को देखते हुये उसे कृष्णजी, काशी और विशालजी की देख-रेख में छोड़ दिया गया कि जब सुरक्षित रूप से शिवाजी घर पहुँच जायेंगे तब वे उन तीनों भाइयों को लिखेंगे और वे उसे सतर्कता पूर्वक उनके पास पहुंचा देंगे।

तब, शिवाजी, आगे बढ़े।

× × ×

आगरे से सीधे मालवा खानदेश और गुजरात होते हुये अपने घर पहुँचने के स्थान पर शिवा राजा ने अपना मार्ग बदला जिससे तलाश करने वाले यह ध्यान भी न कर सकें कि वे गये किधर। उधर शिवा राजा ने पूर्व का मार्ग पकड़ा। आगरा से मथुरा और मथुरा से आगे इलाहाबाद। इलाहाबाद से बनारस और तब दक्षिण-पश्चिम की ओर बुन्देलखण्ड, गोण्डवाना, और गोलकुण्डा।

और शिवा राजा को मार्ग में एक दो नहीं हज़ारों अनुभव हुये। बहुत से स्थानों पर वे बाल-बाल बचे। औरंगजेब अपनी शर्म मानकर यों चुप बैठने वाला आदमी नहीं था। उसके सिपाही चारों ओर ऐलान करते और ढूँढ़ते हुये घूमते फिरे।

एक गाँव में इसी तरह यह दल बढ़ता चला जा रहा था। वहाँ के फौजदार अली कुली ने इनको अपने सिपाहियों से पकड़वा कर बन्द करवा दिया। शिवा राजा को लगा कि यहाँ उनका छूटना असम्भव है। तब उन्होंने अपनी उसी नीति-बल से वहाँ काम लिया।

खड़ाऊँ तो मथुरा ही में छूट गयी थी। उनका स्थान जूतों ने ले लिया था। शिवाजी विशेष-चिता मे थे। आधी रात्रि का समय था। सभी घोर निद्रा में डूबे हुये थे। शिवाजी ने तभी अली कुली के कमरे में प्रवेश किया। उसे जगाया और उसको बैठालकर कुछ कहना चाहा। पहले तो अली कुली बहुत तेज़ हुआ। यहाँ तक कि घबड़ाहट में वह तलवार की ओर झपटा किन्तु बात कुछ उसके मतलब की निकली।

"देखो अली कुली मैं ही शिवाजी हूं।"

सुनकर अली कुली की धरती खसक गयी। अभी तक तो उसने उन्हें शक में ही पकड़ रक्खा था। सुनते ही जैसे उसकी आँखें खुली की खुली रह गयीं और उसके मुँह से अनायस निकल पड़ा :

"ऐं···। तुम शिवा हो। या···अल्ला। इस आधी रात मुझसे क्या

चाहते हो"—बोलते-बोलते भी जैसे उसका दम खुश्क हो रहा था कि न जाने क्या आफत आ जावे।

"मेरे जूतों में दो बेश कीमती नगीने हैं। एक हीरा और दूसरा लाल। उनकी क़ीमत लाख रुपये से ज्यादा ही होगी। इतना तुम्हें मुझे पकड़वाने पर शहंशाह से नहीं मिलेगा। चाहो तो सौदा कर लो", शिवा राजा ने कहा।

अली कुली उस आधी रात यों भी उस बबाल को टालना चाहता था—सौदा पक्का हो गया।

शिवा राजा आगे बढ़े।

घूमते-फिरते शिवा राजा अपने घर राजगढ़ पहुँचे। घर पहुँचकर उन्होंने कुछ आनन्द लेना चाहा। पहरेदार से कहलाया :

"देखो। कहो उत्तर से कुछ बैरागी लोग आते हैं।"

पहरेदार ने जीजाबाई से कहा। साधु-बैरागियों में उनकी वैसे ही विशेष रुचि रहती थी। तुरन्त अन्दर आने की आज्ञा दे दी।

शिवाजी अपने साथियों के साथ अन्दर गये। जाते ही वे माँ के पैरों से लिपट गये।

जीजाबाई हैरान थी कि कौन अजनबी बाबा उनके पैर छू रहा है। जब तक वे कुछ सोचें उसके पहले ही शिवा राजा ने अपनी बूढ़ी माँ की जाँघ पर सर टेक दिया।

और अब उनकी समझ में आया कि उनका खोया लाल आ गया। उन्होंने शिवा राजा को हृदय से लगा लिया।

शिवा राजा कुछ इतने भावोद्विग्न हो गये कि उनके नेत्रों में आँसू छलछला आये।

× × ×

अनायास एक दिन कृष्णा जी, काशी और विशाल जी को सूचना मिली कि शम्भूजी को लेकर रामगढ़ आओ। तीनों भाई बड़े ठाठ से शम्भूजी को लेकर रामगढ़ की ओर चले। मार्ग में कई जगह इन्हें टोका

गया किन्तु सब जगहों से बचते-बचाते ये लोग बढ़ते चले गये।

एक स्थान पर मुग़ल सरदारों ने कुछ शक किया कि लड़का अपने साथियों से बिल्कुल अलग शक्ल का है। उन्होंने उसे रोका। इस पर इन लोगों ने शम्भूजी के साथ बैठकर खाना खाया तब मुग़ल सरदार ने इन लोगों को छोड़ा।

इस घटना पर एक मुग़ल सिपाही ने अपसे सरदार से कहा, "सरदार ! तुम भी कभी-कभी झक करते हो। शिवा राजा का लड़का शम्भू तो मर गया। सारे में शोहरत है।"

सरदार बोला, "झक मैं नहीं तुम करते हो। ये हैं शिवा राजा कही यों ही हवा बाँध दी हो। मैंने बिल्कुल इसी तरह के लड़के को शिवा के साथ आगरे में देखा था मैं टटोल ही उसकी कर रहा हूँ।"

मराठे तो आगे बढ़ गये किन्तु जो व्यक्ति राजगढ़ से शम्भूजी को लेने आया था उसने कहा, "सचमुच शिवा राजा ने यह अफ़वाह फैला रक्खी है कि शम्भूजी रास्ते में मर गया। इससे शम्भूजी की रक्षा भी होगी और उस शोक का ध्यान कर मुग़लों की बेख़बरी में शिवा राजा अपने अगले हमलों की खामोशी से तैयारी करेंगे।

× × × ×

चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुयी थी। एक ओर आदिलशाही हुकूमत वे ही कुकृत्य कर रही थी जो दूसरी ओर मुग़लशाही की उस क़तार में बाबर, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और उसके बाद औरंगजेब तक पहुँचती थी। उसमें औरंगजेब सबसे अधिक तअसुब्बी (साम्प्रदायिक) शाह था। इधर दक्षिण के मामले को लेकर तो वह और अधिक तेज़ हो रहा था। उस मामले में वह बड़ी परेशानी का अनुभव कर रहा था। वह आदिलशाही को हड़पना चाहता था और शिवाजी को भी दाबना चाहता था। इसलिये वहाँ के हाकिमों की बदली थोड़े-थोड़े समय में ही हो रही थी।

जयसिंह ने शिवाराजा से तेईस क़िले झटकने के बाद शिवा को

आगरे भेज तो दिया किन्तु जितनी खुशी शिवाजी के दरबार में आने से नहीं हुयीं थी उससे हजार गुना ज्यादा अफ़सोस शिवा राजा के आगरे से लापता हो जाने पर औरंगजेब को हो रहा था। वह बौखला उठा था। शिवा राजा के चले जाने पर उसने कहा :

"किसी सरकार की जीत इस बात में है कि उसको राई-रत्ती का पता रहे कि मिनट-मिनट में कहाँ क्या हो रहा है क्योंकि एक मिनट की लापरवाही भी सालों-सालों के लिये बेइज्जती और अफसोस दे देती है। शिवा का मसला ही ले लो; उससे मुझे कितना अफ़सोस हुआ और ज़रा सी लाइतलाली पर मुझे न जाने कितनी लड़ाइयों और झंझटों में फँसना पड़ा ·····।"

इसके अतिरिक्त उसका विश्वास था कि उसकी सब तरक्क़ी उसकी अपनी निज की धार्मिक मान्यताओं के कारण हुयी है और अपनी धर्मांधता में वह इस कट्टरता का पक्षपाती था कि जो उसके धर्म में विश्वास न करता हो उसे तबाह और बरबाद करो।

और तभी औरंगजेब के विरोधी धर्म वालों की तबाही और बरबादी होना-आरम्भ हो गयी। शिवाजी के चले जाने के अफसोस में उसने अपनी फौज में एक विशेष दल तैयार किया जो केवल तोड़फोड़ करने और लूटमार करने के लिये ही निकल पड़ा था।

स्कूल, पाठशालायें, धर्मशालायें, धार्मिक-स्थान, मन्दिर, मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट करना एक विशेष काम हो गया।

इसके लिये औरंगज़ेब ख़ुद तख़्त छोड़कर निकल पड़ा।

टुकर-टुकर लोग देखते रहे और आवाज़ आई :

"ढहा दो काफिरों के इस मन्दिर को—

और काशी-विश्वनाथ मन्दिर पर फावड़े चलने शुरू हो गये। वह आवाज़ खुद औरंगज़ेब की थी।

औरंगज़ेब को पता चला कि शिवा आगरे से भाग कर मथुरा ही सबसे पहले पहुँचा था। बस, उसने मथुरा की तबाही बुलवा दी। वहाँ

के राधा-कृष्ण मन्दिर तथा अन्य मन्दिरों को भी तोड़ा-फोड़ा और मथुरा का नाम बदल कर इस्लामाबाद रख दिया।

परन्तु ये सब ख़बरें औरंगज़ेब के लोहे से लोहा बजाने वाले शिवा राजा तक नही पहुँच रही थीं—ऐसा कैसे सम्भव था।

और उन दिनों यह चल भी रहा था। टक्कर पर टक्कर होती थी। कभी एक तरफ से कोई कार्यवाही होती थी तो दूसरी ओर से उसका तगड़ा बदला देने की भावना का स्पष्ट प्रदर्शन हो जाता था। अन्तर केवल इतना था कि एक ओर धार्मिक मदान्धता एवं आतंकवाद पूर्ण साम्प्रदायिकता का बोल-बाला था और दूसरी ओर अपने नियमित-सीमित साधनों को लेकर भारत-माँ की जंजीरों को तोड़ने का।

होली और दीवाली के त्योहारों को बन्द किये जाने की घोषणा कर दी गयी। ज़ज़िया कर लगा दिया लगा। बड़े-बड़े आला अफ़सरों की अलग से तैनाती हुयी जो एक डायरेक्टर-जनरल के मातहत बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आसाम, राजपूताना और गुजरात प्रान्तों में घूम-घूमकर आतंक पूर्वक मन्दिरों को तोड़ते, लाखों-करोड़ों की सम्पत्ति लूटते, मूर्तियाँ अपमानित करते। जयपुर के आम्बेर का मन्दिर, अहमदाबाद (गुजरात) का चिन्तामनी मन्दिर आदि बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट किये गये।

बनारस के विश्वेश्वर मन्दिर के विनाश की सूचना पाकर शिवा राजा का खून भी खौल उठा। उन्होंने अपनी फौजों का बिगुल बजा दिया। उनकी भवानी तलवार चारों ओर चलने लगी। मुग़लशाही द्वारा जीती हुयी तमाम धरती को शिवा राजा ने अपने कब्जे में करना प्रारम्भ किया। पुरन्दर की सन्धि में जयसिंह को तेईस किले सौंप कर जो उन्होंने आगरे को प्रस्थान किया था वे एक-एक करके वापस करना शुरू हो गये।

और शिवा राजा के कानों में उस मूर्तिमयी देवी जीजाबाई के शब्द गूँजने लगे :

"शिवा। काशी विश्वेश्वर का मन्दिर तोड़ा गया पर तूने क्या किया ?"

उनके सामने वह पत्र नाचता रहा जो समर्थ बाबा ने उनके पास भेजा था :

"माँ का ऐसा अपमान ? धर्म का नाम लेकर धर्म पर ऐसा कुठाराघात ? शिवा ! हम-तुम दोनों ही देख रहे हैं ? क्या हम इतने लाचार हो गये.........।"

और—तत्काल—

सिंहगढ़ विजित हुआ। शिवाजी के दो हाथ तानाजी एवं उदयभानु ने क़िले पर चढ़ाई कर दी। एक रात सिंहगढ़ का महत्वपूर्ण गढ़ जीता गया और जब जीजाबाई एवं शिवाजी ने जीतने वालों का स्वागत करने की तैयारी की तो अफसोस ! गढ़ तो मिला परन्तु पालकी में आगे-आगे ताना का शव रक्खा चला आया।

सिंहगढ़ की विजय पर तानाजी मलूसरे की मृत्यु का अपार शोक शिवाजी पर छाया हुआ था।

पालकी के पीछे-पीछे सैनिक टुकड़ियाँ थीं जिनको अपनी भीगी पलकों से सम्बोधित करते हुये शिवा राजा ने कहा :

"मेरे प्यारे बहादुर सेनानियों !

"आप सबकी विजय पर मैं आपको बधाई देता हूँ। आपको मालूम होना चाहिये कि यह युद्ध आपकी मातृभूमि की स्वतन्त्रता का युद्ध है। यह युद्ध आपके देश की आन-बान और शान का युद्ध है। यह युद्ध देश-धर्म और जाति के सम्मान एवं मर्यादा की रक्षा का युद्ध है।

"आपसे मैं यह भी कहना चाहता हूं कि यह युद्ध किसी धर्म और जाति के नाम पर नहीं लड़ा जा रहा है। इतना अन्तर समझ लीजिये कि हम अपने धर्म की रक्षा करना चाहते हैं इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि हम अपने धर्म का कोई सौदा करना चाहते हैं। धर्म और जाति की मान-मर्यादा की रक्षा से हमारा अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि उसके

नाम पर हम अपनी उम्मीदों महत्वाकांक्षाओं की प्यास को बुझाना चाहते हैं।

"आदिलशाही हुकूमत ने यही किया। अब औरंगजेब शाही यही कर रही है। हमने अपने को रक्षा के लिये सुसज्जित किया। ताक़तवर बनाया परन्तु अपनी ओर से धर्म की दुहाई भी नहीं दी। कर्नाटक और बंगलौर में आदिलशाही ने मन्दिर लूटे, मूर्तियाँ तोड़ीं अन्य धार्मिक एवं सार्वजनिक स्थान नष्ट किये। तब हमने उसके विरुद्ध आवाज़ उठाई। आदिल शाही को सबक़ दिया।

"आज फिर वही स्थिति है। आज वह धर्मान्ध औरंगज़ेब मन्दिर तुड़वा रहा है। मूर्तियों की प्रतिष्ठा नष्ट कर रहा है। धर्मशालायें एवं पाठशालायें भ्रष्ट कर रहा है। मैंने अपनी ओर से पूना में एक मस्जिद का निर्माण कराया है जिसे आप सबने भी देखा है। मुझे धर्म की दुहाई देने वाला कौन कह सकता है। उस समय इस बात पर आप सब मुझसे बिगड़े भी थे। मैं केवल मात्र मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिये लड़ा हूँ और लड़ता रहूंगा हमारी जाति या धर्म कुछ भी हो उससे क्या फर्क पड़ता है।

"परन्तु आपने भली प्रकार सुना कि वह औरंगज़ेब धार्मिक मन्दिरों को तोड़कर उसके स्थान पर मस्जिदें खड़ी करा रहा है। उसने जैसा आपने सुना—काशी विश्वनाथ के मन्दिर को अभी-अभी अपने सामने खड़े होकर तुड़वाया और अब वहाँ मस्जिद बनवा रहा है। धर्म के नाम पर दूसरे धर्म पर कुठाराघात वह कर रहा है। हम नही।

"हाँ, हम विदेशी शासन को नही चाहते। इसका भी अर्थ यह नहीं है कि हमें उसकी जाति अथवा धर्म से कोई बैर है।

"हमारे मन्दिर तोड़े जायें और वहाँ मस्जिदें बनें—हम आज मस्जिदें या गिर्जे तोड़कर मन्दिर बनाने शुरू कर दें तो इस जंगलीपन को कौन सभ्य जाति या धर्म सहन कर लेगी। हममें बाहुबल है। हम उसका मुँह तोड़ उत्तर देंगे।

"परन्तु हमारा उत्तर यह नहीं है कि हम पूना में उस धर्म-स्थान को नष्ट कर दें। हमारा उत्तर है उस जंगली शासन को अपनी मातृभूमि की चप्पा-चप्पा भूमि से समाप्त कर दें। हम उसका शासन नष्ट कर रहे हैं। कर देंगे।

"मैं आपको बधाई देता हूं कि आपके बल पर ही हमने अपने एक-एक क़िले को और हर स्थान को उस दुष्ट औरंगज़ेब शाही से छीन लिया है।

"आज इस क़िले को जीतकर कितनी ख़ुशी हो रही है। आशा है हम आगे इससे अधिक उमंग से काम करेंगे।

"कुछ लोगों ने मुझसे आगरे में कहा कि मैंने अफ़ज़लखाँ को धोखे से मारा। मैंने उन्हें भी यही उत्तर दिया कि यह ग़लत प्रचार है। अफ़ज़ल खाँ ने बीजापुर से चलकर प्रतापगढ़ पर जिस प्रकार चढ़ाई बोलने का स्वांग भरा था और मार्ग में मन्दिरों को लूटा, मूर्तियों को तोड़ा और जनता पर अत्याचार किया था उस तरह मैं—यदि वह मिलता सामने–सामने लड़कर उसका सर धड़ से अलग करने की कोशिश करता। किन्तु वह तो स्वयं मैदानी लड़ाई नहीं लड़ा। वह मुझे धोखे से मारना चाहता था। उसने ही समझौते की बातचीत पहले शुरू की। यों मैं शंकित अवश्य था और हर कठिन समय के लिये पहले से तैयार होकर गया था परन्तु जब अफ़ज़ल ने पहले मेरी पीठ पर कटार भोंक दी तब मैंने उस पर वार किया। वह तो मेरी होशियारी थी कि मैं उस समय इतना तत्पर था।

"लोग मुझसे कहते थे कि मैंने लूट-खसोट की। क्यों न करता? जो सोना, जवाहरात और रुपया पैसा मन्दिरों को नष्ट करके; दूसरों को लूट कर दूसरों के खजानों में गया या जा रहा था उसे लूटकर यदि मैंने जनता को ही लौटा दिया तो अपनी दृष्टि में मैंने राजनीतिक-पुण्य का कार्य किया है।

"मैं साम्प्रदायिक भी कदापि नहीं हैं। हाँ मुझे सम्प्रदायवादियों से

मोर्चा अवश्य लेना पड़ता है। मैं तो पूर्णतः स्वतन्त्रता के युद्ध का एक सिपाही हूँ—वैसा ही सैनिक जैसा किसी भी देश के स्वतन्त्रता के युद्ध का कोई सैनिक होगा।

"मुझे अपने हर काम पर गर्व है।"

"मुझे आपका बहुत भरोसा है।"

"बोलिये। भारत माता की जय।"

सैनिकों ने हुँकारा :

"भारत माता की जय।"

शिवाराजे ने पुनः नारा बुलन्द किया :

"बोलिये ! ज़ोर से बोलिये ? हर-हर महादेव।"

"हर-हर महादेव"—सैनिकों के स्वर आकाश को गुँजाने लगे।

तुण्याया कण्या गर्जताती शिवाजी
तिथें नांयतो पेशव्या मर्द गाजी।
जशीं मर्दिलीं कौरवे पांडवानें
तशीं मारिलीं मोगलें पेशव्यानें॥

: ३१ :

एक व्यक्ति ने अपने नेत्रित्व से, राजनीतिक दूरदर्शिता और सूझ-बूझ से, सैनिक संगठन की विशेषताओं से, अत्यधिक परिश्रम और उद्योग से दक्षिण में एक सशक्त राज्य-सत्ता को जन्म दिया। अपने से चौगुनी शक्ति बीजापुर के छक्के छुड़ाये। अपने से सोलह गुनी ताक़त मुग़ल शाही को बौखला दिया। वह एक व्यक्ति था—एक—शिवाराजा—जिसने अपने ऐतिहासिक कार्यों के द्वारा इतिहास की गति बदल दी। जिसने दिखा दिया कि केवल एक व्यक्ति अपने बौद्धिक बल और शारीरिक शक्ति को लेकर स्वदेश-जाति और धर्म की मान-मर्यादा की रक्षा कर विदेशी-शासन-सूत्र को छिन्न-भिन्न करने में किस प्रकार समर्थ हो सकता है और हुआ।

और

हिम्मते मरदां मददे खुदा'

चारों ओर से उसे बल मिला, शक्ति मिली सहयोग मिला, सन्त तुकाराम की अध्यात्मिक चेतना मिली, समर्थ गुरु रामदास का अध्यात्मिक, दार्शनिक, धार्मिक एवं राजनीतिक प्रोत्साहन मिला, अपार धन मिला, ऐसी जाति के ऐसे कर्मठ योद्धा मिले जिन्होंने दिखला दिया कि

मातृभूमि की मर्यादा की रक्षा करना कैसे सम्भव हो सकता है, जबकि प्रत्येक की स्थिति प्रतिकूल हो।

और वे निरन्तर फलते-फूलते बढ़ते ही चले गये।

सिंहगढ़ पर विजय पताका फहरा कर इन्होंने मुग़लशाही के टखने फिर हिलाये। शहंशाह मुग़लिया औरंगज़ेब की बहन जहाँआरा बेगम की मालगुज़ारी के उसी नगर सूरत को मराठों ने फिर झकझोरा। आधे से ज्यादा नगर को जलाकर राख कर दिया। अटूट सम्पदा लूटी। अपने खाली हुये खज़ाने को फिर भरा। करोड़ों की सम्पत्ति से अपने भविष्य के खर्चों और सैनिक संगठनों की संभाल की व्यवस्था की। वह लूट नहीं जवाब था। आवश्यकता थी। उन परिस्थितियों में शिवाराजा के पास कोई चारा नहीं था। विशेषता यह थी कि इतने विनाशकारी कार्य करते हुये भी व्यक्तियों की मर्यादा की सदा रक्षा की जाती थी। कभी किसी नारी का अपमान नही किया गया। विदेशियों का क़त्ले-आम नहीं दुहराया गया। धन केवल धन प्राप्त करना और "समझ लो। सूरत को बारम्बार हम लूटेंगे। यदि हमें नियमित सालाना चौथ न दी गयी और हमारी शक्ति का लोहा न माना गया तो हम ऐसा करते रहेंगे।"

और तब स्वयं शिवाराजा ने अपने दुर्धर्ष सेनापति प्रतापराव गूजर को साथ लेकर बरार, बगलान और ख़ानदेश की सीमाओं को दुर-दुराया। कारंजा से वैभवशाली नगर की सम्पत्ति हस्तगत कर शिवा-राजा जिधर गये उधर चौथ वसूलने की व्यवस्था की और घोषित किया—"ये सीमायें हमारी हैं, देश की हैं—विदेशियों की नहीं हैं, मुग़लों की नहीं हैं। अत्याचारी विदेशी शासक के अपमानों को हम सहन नहीं कर सकते। हम अपना राज्य स्वयं करेंगे। हमें स्वराज्य चाहिये। हम स्वराज्य लेकर रहेंगे। ले रहे हैं।"

चारों ओर हलकम्प मचा हुआ था। शहंशाहे मुग़लिया ने स्वयं कई बार डर दिखाया कि जनाब खुद दक्खिन की ओर तशरीफ़ ला रहे

हैं । शिवाराजा के मुक़ाबले को युद्ध की बागडोर खुद अपन हाथ में लेंगे परन्तु नसों में ज़ोर आ-आ कर रह गया । हिम्मत बढ़ी नहीं ।

तब दक्षिण की बागडोर महाबतखां को संभलवाई गयी बहुत तेज-सिपहसालार बहादुर खां को गुजरात से बुलवा कर महाबत खां की मदद को भेजा गया । कुछ प्रसिद्ध राजपूत सरदार भी मुग़ल सेना के साथ दक्षिण भेजे गये । महावत खां, जसवन्तसिंह, दाऊद खां तथा दूसरे जंगी सरदार औरङ्गाबाद में इकट्ठा हुये ।

वहाँ शहज़ादा मुअज़्ज़म का दरबार लगा हुआ था । शिवाराजा के विरुद्ध मोर्चा उठाने की योजनाओं पर दिन-रात बहसें हो रही थीं ।

शाहज़ादा मुअज़्ज़म के दाहिने दाऊद खां डटा हुआ था । बायें जसवन्तसिंह बैठा था और जसवन्तसिंह के बराबर महाबत खां अपनी चिन्तित मुद्रा में ऐसे बैठा था जैसे शिवाराजा के नाम का सब सरदर्द उसी को हो रहा हो ।

तभी आवाज़ आयी :

झन्, झन्, झनन् झन्, झन्, झनन्

यकायक बीस-तीस छोकरियों का दल क़ालीन पर छितर गया । पंजाब और अफगानिस्तान की वे अर्ध-नग्न नाज़नीन सुन्दरियाँ अपने-अपने हाथ में शराब के प्याले लिये दरबार में झूम गयीं । वे चलतीं तो घुँघरू बज उठते; डोलतीं तो रूप झनझना उठता और तभी शह-ज़ादा मुअज़्ज़म ने पुकारा :

"बाँट दो……।"

और उन छोकरियों ने शराब के प्याले दरबार भर के लोगों को बाँट दिये । इन राक्षसी आँखों को तरेरने वाले तुर्की और ईरानी सरदारों ने घूर-घूर कर शराब के प्याले थाम लिये और दौर चलने लगा । दौर चला और खूब चला ।

महाबत खां हैरानी में अपनी पीठ को पीछे चौकी पर टिकाये हुये कुछ सोच ही रहा था कि उसी समय ख़बर आयी :

'सलहट को दोपहर तीन बजे मराठों ने छीन लिया...''

शाहजादा मुअज़्ज़म एक बार अपने तख्त पर हिला और फिर उढ़क गया। इस समय वह अनेक षोडषियों से घिरा हुआ था। चार सौ पंजाबी और अफगानिस्तानी छोकरियों से उसका खेमा आबाद था और इस समय वह ईरानी इत्र की खुशबुओं से तर-बतर हो रहा था।

महाबत खां तथा अन्य कई सिपहसालार अपने-अपने प्याले छोड़कर उसी रात कूच को चल दिये परन्तु हाथ कुछ न लगा। महाबत खां पर तो शहंशाह औरंगजेब गरम हो गया और उससे दक्षिण की लड़ाई की बागडोर छीन कर बहादुर खां तथा दिलीर खां के हाथों में सौंप दी।

बहादुर खां और दिलीर खां ने सूपा तथा पूना पर तूफ़ान ढाने शुरू कर दिए। बुरी दशा कर दी उन्होंने वहाँ के अबोध नागरिकों की। परन्तु उधर प्रतापराव गूजर, आनन्दराव मका जी तथा मोरोपन्त पिंगले ने खानदेश पर ऊधम ढा दिये। लाचार बहादुर खां और दिलीर खां को उधर भागना पड़ा।

मोरोपन्त ने सलहट और मुलहट को जीत लिया। शिवाराजा का बाल साथी सूर्य तक केकड़े वहाँ उत्सर्ग हो गया।

इन भयंकर युद्धों में दोनों ओर के चोटी के योद्धा और सरदार जुटे हुये थे। मुगलों की बेहद सैनिक शक्ति दक्षिण के युद्धों में लगी हुयी थी।

दिलीर खां को भाग कर प्राण बचाने पड़े।

जो दूत यह खुशखबरी लाया उसे शिवाराजा ने प्रसन्न होकर बहुत सा धन दिया और तब चारों ओर मिठाई बंटी। राजगढ़ में दीपावली मनायी गयी।

इस प्रकार शिवराजा ने पहले से अधिक विस्तार में अपने को समृद्ध किया तथा अपने राज्य की सीमायें विधिवत निर्धारित कीं।

सीमाओं की रक्षा का प्रबन्ध किया। मुग़लों से निरन्तर युद्ध करने के लिए एक सेना अलग ही लगी रही।

इन्हीं दिनों मन्हाला को पुनः प्राप्त किया गया और तब शिवा राजा के राज-तिलक की तैयारियाँ प्रारम्भ हुयीं।

× × ×

विजय श्री प्राप्त छत्रपति शिवाजी का आज राज-तिलक हो रहा था।

छत्रपति शिवाजी की राजधानी राजगढ़ आज आनन्द और हर्ष में विह्वल थी। नगर में स्थान-स्थान पर वन्दनवारें लटकाई गयी थीं। तोरणों और हरियाली के द्वार बनाये गये थे। "छत्रपति शिवाजी महाराज की जय"—स्थान-स्थान पर अंकित किया गया था।

स्त्री-पुरुष बहुत प्रसन्न और प्रफुल्लित दिखायी देते थे। सुबह से ही लोग अच्छे वस्त्र पहन कर माथे पर चन्दन लगा-लगा कर सड़कों पर घूम रहे थे।

उधर महल में राज-तिलक के लिये छत्रपति शिवाजी महाराज अपनी तैयारी में थे।

प्रातःकाल ही सबसे पहले उनका अभिषेक किया गया। गंगा जल तथा दूसरी नदियों से लाया हुआ पवित्र जल उनके अभिषेक के लिये एकत्र किया गया। श्वेत वस्त्रों को धारण कराने के पश्चात् शिवाजी को भाँति-भाँति की फूल-मालायें पहनाई गयीं। उन पर इत्र छिड़का गया और तब वे स्नान करने के स्थान पर पहुँचे। हौले-हौले पग टेकते हुये शिवाजी प्रसन्न मुद्रा में आगे बढ़ रहे थे। उनके साथ उनकी रानी सूर्या बाई तथा कुमार शम्भू जी भी साथ चल रहे थे। इनके पीछे शिवाजी के आठों मंत्रिगण थे जो हाथों में सोने के कलश लिये हुये थे। इन स्वर्ण-कलशों में पवित्र जल भरा हुआ था।

अभिषेक स्थान भली प्रकार से सजाया गया था। वहाँ एक सिंहासन रक्खा हुआ था जिस पर स्वर्ण-रत्न जड़े हुये थे। वेद मन्त्रों के बीच

शिवाराजा इस सिंहासन पर बैठे। उनकी बायीं ओर सूर्या बाई बैठ और तब आठों मन्त्रियों ने उन स्वर्ण कलशों के पवित्र जल को महाराजा शिवाजी तथा रानी सूर्या बाई पर उड़ेल दिया। निरन्तर वेद मंत्र का पाठ हो रहा था और महाराज शिवाजी पर पुष्प वर्षा की ज रही थी।

उस अवसर के लिये विशेषरूप से आमन्त्रित भारतवर्ष के प्रसिद्ध पंडित गागा भट्ट को तत्काल स्वर्ण मुद्रायें तथा राजवेश आदि समर्पित किये गये। अन्य ब्राह्मणों को भी उसी प्रकार पुरस्कृत किया गया।

वह भीड़-भाड़ उस स्नानागार से हट आयी और तब शिवाजी महाराज ने पुनः नवीन सुन्दर वस्त्र धारण किये। इस बार शिवाजी महाराज ने पीले रंग का अंगा पहन रक्खा था जिसकी रेशम और उस पर झलकता हुआ सोने का काम दूर से ही शोभा दे रहा था। शिवाजी ने रेशम का गुलाबी पायजामा पहना हुआ था और सर पर लाल रंग की रेशमी पगड़ी पहन रक्खी थी। पगड़ी पर हीरे-पन्ने की एक कलगी लगी हुयी थी और ऊपर मखमल मढ़ा सोने-चाँदी की मूठ का छाता या छत्र लगाया हुआ था जिसे दो व्यक्ति लेकर चल रहे थे।

पवित्र जल एवं वेद मंत्रों द्वारा अभिष्कृत शिवाराजा को राज-तिलक वाले मंडप में लाया गया।

वहाँ अपार जनसमूह एकत्र था। इस अवसर पर देश भरसे अतिथि आये हुये थे। लगभग पचास हज़ार परदेशी राजगढ़ में ठहरा हुआ था जो शिवाजी महाराजा का राज-तिलक देखने को उत्सुक था। अन्न-पूर्णा का भंडार खुला हुआ था और राजकोष से सब व्यय किया जा रहा था।

इस अवसर पर गागा भट्ट तथा अन्य स्वनामधन्य पंडितों—ब्राह्मणों के अतिरिक्त स्वयं समर्थ बाबा रामदास उपस्थित थे। एक प्रकार से सब व्यवस्था के वे मुख्य कार्य संचालक थे। हिन्दवी स्वराज्य का अपना एक बड़ा स्वप्न आज साकार हुआ वे देख रहे थ।

तब रत्न, भूषणों और मखमली-रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित शिवाजी महाराज को उस ऊँचे स्थान पर लाया गया जो इस अवसर पर विशेष रूप से बनाया गया था। लग रहा था जैसे सोना और जवाहरात चारों ओर बिखरा पड़ा है। यह ऊँची वेदी सोने से मढ़ी हुयी थी। इस पर वेद मंत्रों के बीच महाराज शिवाजी विराजमान होने को थे।

ऊपर छत्र झूम रहा था।

इसके ऊपर रेशमी भगवा झंडा हवा में लहरा रहा था।

दायें-बायें और सामने नाना प्रकार के राज चिह्न लिये हुये राज-दरबारी खड़े हुये थे। ये सब रंग-बिरंगे रेशमी वस्त्र पहने थे जिन पर सुनहरे काम की बेलें और फूल कढ़े हुये थे। सबके रेशमी पीले साफे और माथे पर लगे रोली के रोचने अलग ही छटा बिखेर रहे थे।

शिवाजी के सिंहासन के ऊपर एक तुला और दो ओर से आड़े रक्खे हुये भाले विशेष रूप से व्यवस्थित किये गये थे।

मुख्य प्रधान पेशवा मोरो त्रिम्बक पिंगले, आमात्य मजूमदार रामचन्द्र नीलकंठ, सचिव सूर्नी अन्नाजी दत्रो, वरनवीस मन्त्री दत्ताजी त्रिम्बक शिवाजी के दाहिनी ओर थे। बायी ओर सरनौबत सेनापति हम्बीर राव मोहने, दाबिर सुमन्त रामचन्द्र त्रिम्बक, न्यायाधीश रावजी नीराजी एवं पंडितराव रघुनाथ पंडित थे।

शिवाजी के बिलकुल पास समर्थ बाबा रामदास थे जिनकी गम्भीर किन्तु प्रसन्न मुद्रा राज-तिलक से प्रकट महत्व प्रदर्शित कर रही थी। वे उस युग के महान् धार्मिक एवं सामाजिक नेता थे।

गागाजी भट्ट, रघुनाथ पंडित (जो अब आकर राजतिलक के धार्मिक कार्यों में लग चुके थे। तथा धर्म एवं संस्कृति के अन्य प्रपंडित वेद मंत्रों का उच्चारण कर रहे थे।)

रुग्णा जीजाबाई (जिनकी इस सुखद स्वप्न को देखने के ग्यारह दिन पश्चात् मृत्यु हो गयी) दूर से ही आशीर्वाद प्रस्तुत कर रही थीं।

तदनन्तर शिवा राजा सिंहासन पर विराजे। इतनी देर उनके खड़े-

रहने तक सामने के सभी राज-पुरुष अपने-अपने स्थानों पर खड़े रहे। सभी के यथा स्थान बैठने के पश्चात् समर्थ बाबा रामदास एवं गागा भट्ट ने आगे बढ़कर छत्रपति शिवाजी का राज-तिलक किया। 'छत्रपति महाराज शिवाजी की जय'—के नारों से आकाश मण्डल गूँज उठा।

इस अवसर पर विशेष रूप से आये इंगलैण्ड के राजदूत हेनरी आक्सिण्डेन भी एक स्थान पर बैठे उस सब वैभवपूर्ण दृश्य को देखते हुये ओठों पर मुस्कान ला रहे थे। इसके अतिरिक्त डच के व्यापारी अब्राहम ली. फेबर भी एक स्थान पर बैठे थे।

राज-तिलक के उपरान्त शिवाराजा सबसे व्यक्तिगत रूप से मिले। लोगों को उन्होंने अपने हाथ से भेंट-उपहार-रत्न आभूषण व राज-वेश प्रस्तुत किये।

यही नहीं, इस अवसर पर लाखों रुपया दान किया गया।

राज-तिलक के पश्चात् छत्रपति महाराज शिवाजी अपने सबसे बढ़िया घोड़े पर चढ़कर जगदीश्वर के मंदिर गये: दर्शन के उपरान्त उन्हें सुसज्जित हाथी पर बिठलाया गया। उनके साथ कुमार शम्भू जी भी था।

हाथी के स्वर्ण सिंहासन पर जरी-पटका और भगवा झंडा लहरा रहे थे।

यहीं से छत्रपति महाराज शिवाजी की शोभा-यात्रा राजगढ़ नगर में भ्रमण को चली।

इति